परम पूज्य श्वेतपिच्छाचार्य
श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज

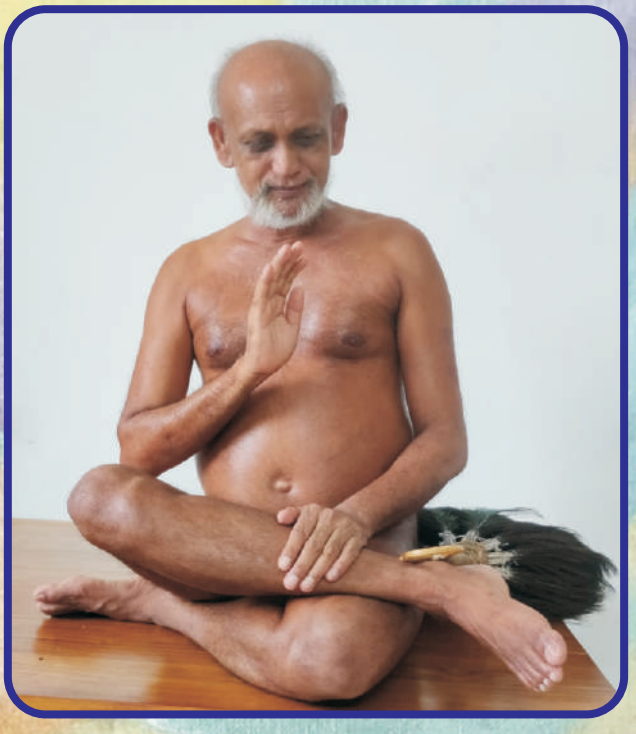

श्री राजेन्द्र कुमार, श्री राकेश कुमार, श्री उमेद कुमार,
श्री सुनील कुमार, अनिल कुमार
नायक परिवार, ककरौली

कला-विण्णाणं

(कला विज्ञान)

मंगल आशीर्वाद

परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती राष्ट्रसन्त
श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज

ग्रंथकार

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी
आचार्य श्री वसुनंदी मुनिराज

ग्रंथ -

कला-विण्णाणं

(कला विज्ञान)

मंगल आशीर्वाद

परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती राष्ट्रसन्त
श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज

ग्रंथकार

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी
आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

सम्पादन – आर्यिका वर्धस्वनंदनी

संस्करण - प्रथम 2021

प्रतियाँ - 1000

मूल्य - सदुपयोग

ISBN : **978-81-951375-9-6**

प्राप्ति स्थान

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला समिति
ई० 102 केशर गार्डन
सै० 48 नोएडा-201301
मो. 9971548889
9867557668

मुद्रण व्यवस्था

अलंकार प्रकाशन

सम्पादकीय

जिस प्रकार गंध के बिना पुष्प, स्निग्धता के बिना घृत, घृत के बिना दुग्ध, मिठास के बिना इक्षु, शीतल चांदनी के बिना चंद्र, प्रचंड प्रताप से रहित सूर्य, जीवंतता से रहित मानव शरीर शोभा को प्राप्त नहीं होते, जिस तरह जल के बिना नदी, मानचित्र में बने पर्वत, मार्गादि, पाषाण से बने वृक्ष, प्लास्टिक या कागज से बने पुष्प क्रमशः व्यक्ति को जीवनदान देने में, उस स्थान के आनंद को देने में, फल-फूल देने में तथा प्राकृतिक खुशबू देने में समर्थ नहीं होते उसी प्रकार कला विज्ञान से रहित मानव का जीवन मृत तुल्य होता है।

कला विज्ञान से रहित मानव नीतिकारों के शब्दों में पुच्छ विषाण हीन दो पैर वाला पशु है। किसी भी स्त्री की सुंदरता उसके आभूषणों से नहीं शील से होती है, राजा का पराक्रम और यश नृशंस नरसंहार से नहीं न्याय-सत्य व अहिंसा पर आधारित होता है। राजकीय शोभा असभ्य, अशिष्ट, संस्कारविहीन जनसमूह से नहीं अपितु शिष्ट, सभ्य, सदाचारी, सज्जन व विद्वानों से है। धन की शोभा भूमि में कब्र बनाकर रखने से नहीं दान व यथोचित मानव सेवा से है। उस जल की प्रशंसा नहीं की जाती जो बाढ़ के रूप में नरसंहार एवं विप्लव का रूप ले लेता है अपितु वह जल प्रशंसनीय है जो करोड़ों कंठों को तृप्ति प्रदान करता है, असंख्य पुष्प व फलों के विकसित होने का कारण बनता है एवं असंख्यातासंख्यात जीवों के देह ताप को दूर करने में समर्थ होता है।

यदि कोई भी बालिका सुसंस्कार, मृदुव्यवहार, मधुरभाषण, मंगलगान एवं सुकृत कार्यों में अग्रणीय है तो वह भले ही रूपवान् न हो तब भी आदरणीय व प्रशंसनीय होती है। कला का जीवन में क्या महत्व है यदि ऐसा कोई व्यक्ति पूछे तो इतना कहना पर्याप्त होगा कि जो महत्व मिष्ठान्नों में मिष्टता का, बंधुजनों में स्नेह का, माँ के व्यवहार में वात्सल्य का एवं पिता के दायित्व का होता है वही महत्व जीवन में कला का होता है।

कला सभ्य-शिष्ट व आदर्श समाज की रीढ़ की हड्डी के समान होती है। किन्हीं-2 व्यक्तियों ने तो कलाओं को सुसंस्कृत समाज का प्राण ही माना है। कला में वह शक्ति है कि वह लोगों की जीवन धारा को उस ओर प्रवाहित कर देती है जहाँ वह स्वयं के लिए एवं अन्य सभी के लिए भी आनंदवर्द्धक व हितकारक होती है। यह लोगों को संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठाकर उनको विराटता, उदारता व विशालता प्रदान करती है। कला व्यक्ति को 'स्व' से निकाल कर "वसुधैव कुटुंबकम्" से जोड़ती है। कला में मानव मन में संवेदनाएँ उभारकर अहिंसादि गुणों को संवर्द्धित करने, सुख-शांति बनाए रखने, प्रवृत्तियों को ढालने, चिंतन को मोड़ने तथा अभिरुचि को दिशा देने की अद्‌भुत क्षमता है।

अहिंसा, दया, करुणा, सत्य, अनेकांत, समन्वय, मैत्री, वात्सल्य वा अनेकता में एकता इत्यादि भारतीय संस्कृति के ऐसे तत्व हैं जिन्होंने विषम परिस्थितियों में भी इस संस्कृति के प्रवाह को अक्षुण्ण बनाए रखा है। संस्कृति के इन तत्त्वों को प्राचीन काल से लेकर आज तक की कलाओं में देखा जा सकता है। इन्हीं कलाओं के माध्यम से संस्कृति के अनेक सकारात्मक पक्षों को आज तक जाना गया है व भविष्य में भी जाना जाएगा। इन्हीं कलाओं के माध्यम से लोकजीवन, लोकमानस तथा जीवन का आंतरिक और आध्यात्मिक पक्ष अभिव्यक्त होता रहता है।

टॉलस्टॉय ने कहा कि अपने भावों की क्रिया, रेखा, रंग, ध्वनि

या शब्द द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्ति करना कि उसे देखने या सुनने में भी वही भाव उत्पन्न हो जाए, कला है। हृदय की गहराईयों से निकली अनुभूति जब कला का रूप लेती है तब संस्कृति ही मानो मूर्त रूप लेती है। चाहे उसका माध्यम वर्णवर्तिका-तूलिका हो या स्वर गान, वाद्यों की झंकार हो या सुंदर वस्त्राभूषणों का निर्माण, शृंगार, वीर, वैराग्य आदि को उत्पन्न करने वाली संगीत साधना हो या संस्कृति को जीवंतता प्रदान करने वाला नृत्य, मानवता के उत्थान के सोपान रूप चित्रकला हो या देश की रक्षा एवं आत्म सुरक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्र संचालन कला, स्वामिभान के साथ कुशलतापूर्वक जीवन व्यतीत करने हेतु आजीविका कला या मर्यादित जीवन जीते हुए स्वकल्याण के मार्ग पर अग्रसर करने वाली जीवोद्धार कला। मनोरंजन, सौंदर्य प्रवाह, उल्लास इत्यादि तत्त्वों से आपूरित इन कलाओं में मानवीयता को सम्मोहित करने की शक्ति है।

ये कलाएँ न केवल व्यक्ति विशेष के लिए अपितु संपूर्ण मानव जाति, देश व राष्ट्र के उत्थान के लिए, उनकी उन्नति के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। कला, यश, धन, शान्ति, सुख-समृद्धि का हेतु है और समीचीन मार्ग पर अग्रसर करने का माध्यम भी बनती है। कहा जाता है कि जिस जाति या देश की कला को जितनी समृद्ध और सुंदर होगी, वह जाति उतनी ही गौरवशाली और प्राचीन होगी इसलिए कला को किसी भी राष्ट्र की संस्कृति का मापदंड कहा जा सकता है। कला प्रगतिशील विचार की परिचायक है। इसी के माध्यम से नवीन विचारों, आचार और मूल्यों का सृजन होता है। कला से युक्त मानव, समाज, देश व राष्ट्र विश्वभर में वैशिष्ट्य को प्राप्त करता है।

ग्रंथकार आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज ने "तच्च-सारो" में भी कहा है –

जहिं हवदि सम्माणो, कला कला-विआण य।
संपदा य सुहं संती, तहिं देसे पवड्ढदि॥

जिस देश में कला और कला विशारदों का सम्मान होता है उस देश में सुख, शांति और संपदा प्रवर्धित होती है।

प्रस्तुत **''कला-विण्णाणं''** नामक ग्रन्थ में पुरुषों की 72 कला एवं नारियों की 64 कलाओं का श्रेष्ठ, सुंदर, मनोरम विवेचन किया है। यथा–

रहण-सहण-वत्ताणं, देह-बुद्धि-संठिदि-अण्णपाणाण।
जणवादकला णेया, णाणं देदि जा सा णरस्स।।48।।

जो कला मनुष्य के रहन-सहन, वार्ता, शरीर, बौद्धिक स्तर, अन्न-पानादि का ज्ञान देती है वह पुरुष की जनवाद कला जाननी चाहिए।

गोहूमाइ-सस्साण, फल-सागादीण तिलाइ-अत्थाण।
तिल्लाइ-तरलाणं च, सोहणं धुवणं परिकम्मं।।300।।

गेहूँ आदि अनाज, फल-सब्जी, तिलादि खाद्य-पदार्थ, तेलादि तरल पदार्थों का शोधना, धोना आदि नारियों की परिकर्म कला है।

इस ग्रंथ की प्रत्येक गाथा का सौष्ठव मनोहर है। ग्रंथ को प्रारंभ कर उसे मध्य में छोड़ने का मन नहीं होता। कला प्रेमी तो इस ग्रंथ को पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न होंगे ही, किंतु जो कला के प्रति अधिक आकृष्ट नहीं हैं, उन्हें भी कलावान् होने की प्रेरणा ग्रंथकार ने ग्रंथ में दी है उन्होंने गाथा 357-358 में कहा है कि जिस प्रकार किरणों से हीन सूर्य, गंध से हीन पुष्प, अंकों से हीन शून्य, प्राण प्रतिष्ठा से रहित जिनबिंब, मधुरता से रहित इक्षुदंड माना जाता है उसी प्रकार सुकला से हीन मनुष्य माना जाता है अतः सभी लोगों को बहुयत्नपूर्वक सुकला ग्रहण करनी चाहिए।

संपूर्ण समाज व देश की शोभा कला के माध्यम से ही होती है। आचार्य भगवन् ने ग्रंथ में कहा है–

सक्कला विज्जुदोव्व य, सामण्णणरा उवयरणं व तस्स।
सा पाणोव्व दु समाय-सुहदजीवण-सक्किदीणं च॥7॥

सत्कला विद्युत के समान है और सामान्य नर उसके उपकरण के समान हैं। वह सत्कला समाज के सुखद-जीवन व संस्कृति के लिए प्राण के समान है।

सुकला-कलायाराण, हवेदि सम्माणं जम्मि देसम्मि।
तम्मि हु णाण-वड्ढणं, सुभिक्ख-माणंदो समिद्धी॥6॥

जिस देश में सुकला व कलाकारों का सम्मान होता है, वहाँ ज्ञान-वर्द्धन, सुभिक्ष, आनंद व समृद्धि होती है।

प्रस्तुत **'कला-विण्णाणं'** (कला विज्ञान) नामक यह ग्रन्थ परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा 372 गाथा छंदों में निबद्ध है। आचार्य भगवन् स्वयं ही ज्योतिष कला, वास्तु कला, लेखन कला, कविता कला, छंद विचार कला, वैद्यक कला, अध्यात्म वा धर्म कला इत्यादि कलाओं में निपुण हैं। कला से युक्त व्यक्ति ही कलाओं का प्रकाश विस्तरित करने में प्रयत्नशील हो सकता है। संयम, तप, उत्तम चर्या का पालन करना, समाज को निर्देशित करना, ग्रंथों का विभिन्न भाषाओं में लेखन करना, धर्मोपदेश देना, संघ संचालन इत्यादि कलाएँ ही हैं जिनका अंतर्भाव किन्हीं-किन्हीं कलाओं में हो जाता है। प्राकृत भाषा में चालीस से अधिक ग्रंथों का लेखन कर आचार्य श्री ने वर्तमान में जो युवाओं के मध्य भी प्राकृत भाषा की अलख जगायी है वह अभिवंदनीय व श्लाघनीय है।

परम पूज्य अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी गुरुदेव के प्रति यह ही नहीं अपितु कई सदियाँ कृतज्ञता के भाव से विनयवान् रहेंगी। हिमाचल की गोद से बहती हुई पवित्र मंदाकिनी जिस प्रकार सभी

को शीतलता प्रदान करती है उसी प्रकार गुरुवर श्री द्वारा लिखित ग्रंथ संसार दु:खों से संतप्त भव्यों के चित्त को निर्मल व शीतल करने वाले हैं।

यदि इस ग्रंथ के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ग्रंथाध्ययन करें। इस ग्रंथ के मुद्रण व प्रकाशन में सहयोगी सभी धर्मस्नेही जनों को गुरुदेव का मंगलमय शुभाशीष। इस ग्रंथ के मुख पृष्ठ (कवर) पर ऊपर दो हाथ उगते हुए सूर्य के इधर-उधर दिखाए हैं। वे दिखा रहे हैं कि प्रकृति ने मानव को कला प्रदान की एवं नीचे पुरुष व नारी के चित्र दिखाए कि ये दोनों ही उस कला को विनम्रता से सहर्ष स्वीकार करते हैं। नर व नारी दोनों ही कला से युक्त हैं, इस प्रकार यह दर्शाया गया है। यह कवर चित्रकला (Painting) में निपुण श्रीमती संगीता जैन जी, नोएडा ने तैयार किया है। अपनी कला के माध्यम से वे जिनशासन की प्रभावना करने में समर्थ हो सकें एतदर्थ उन्हें पूज्य गुरुदेव का शुभाशीष।

जन-जन के श्रद्धापुंज परमपूज्य अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज का संयम, तप, ज्ञान, साधना का सौरभ सहस्रों वर्षों तक सम्पूर्ण विश्व को सुरभित करता रहे। गुरुवर श्री को आरोग्य लाभ हो एवं वे अपने लक्ष्य की शीघ्र प्राप्त करें। परम पूज्य गुरुवर श्री के चरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति सहित कोटिश: नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु !...।।

'जैनं जयतु शासनम्'

श्री शुभमिति अश्विन शुक्ल षष्ठी
श्री वीर निर्वाण संवत् 2547
सोमवार 11-10-2021
श्री सिद्धक्षेत्र तारंगा जी (गुजरात) **आर्यिका वर्धस्वनंदनी**

आमुख

पं. सनत कुमार विनोद कुमार जैन

जैन वाङ्मय का उद्गम स्थल तीर्थंकर की वाणी है जो अनादिकाल से गतिमान है। जिनवाणी द्वादशांग रूप है। इसके बारहवें दृष्टिवाद अंग के पाँच भेदों में चौथे पूर्वगत के चौदह भेद हैं। उनमें नवमें विद्यानुवाद पूर्व में सभी प्रकार की विद्याओं का कथन है।

संसार में दो प्रकार की विद्या प्रचलित है। (1) कल्याणकारी विद्या (2) लोकोपकारी विद्या। आत्म कल्याण के सभी प्रयास, धर्माराधना, संयमाराधना, पंचाचार आदि कल्याणकारी विद्या हैं। जिससे संसार समुद्र पार किया जा सकता है। लोक का उपकार करने वाली विद्या लोकोपकारी विद्या है। यह विद्या मनुष्यों को यश प्रदान कराती है, मनोरथों को पूर्ण करती है एवं धर्म, अर्थ तथा काम रूप फल से सहित सम्पदाओं की परम्परा उत्पन्न करती है अतः विद्या कामधेनु है, चिन्तामणी रत्न है। विद्या मनुष्य का बन्धु है, मित्र है। विद्या ही सब प्रयोजन सिद्ध करने वाली है।

वाङ्मय में सभी विद्या और कलायें समाहित रहती है।

नबिनावाङमयात्किंचिदस्तिशास्त्रंकलापिवा।

ततोवाङ्मयमेवादौ वेधास्ताभ्यामुपादिशत्॥109॥ 16 सर्ग-आदिपुराण

वाङ्मय के बिना न तो कोई शास्त्र है और न कोई कला है। इसलिए भगवान वृषभदेव ने सबसे पहले अपनी पुत्रियों को वाङ्मय का उपदेश दिया और भरत को अर्थशास्त्र, नृत्यशास्त्र, वृषभसेन को गाना-बजाना आदि गन्धर्व शास्त्र, अनन्त विजय को चित्रकला आदि समस्त कलाओं, मकान बनाने की कला, बाहुबली को काम नीति, स्त्री-पुरुषों के लक्षण, आयुर्वेद-धनुर्वेद, घोड़ा-हाथी आदि के लक्षण जानने के तंत्र और रत्न परीक्षा आदि अनेक

प्रकार के शास्त्र तथा पुत्री ब्राह्मी को लिपि विद्या और सुन्दरी के लिए अंक विद्या का अध्ययन कराया। कहा भी है –

अनन्त विजयायाख्याद् विद्यां चित्रकला श्रिताम्।

नानाध्यायशताकीर्णा साकलाः सकलाः कलाः ।121॥ 16 वर्ग आदिपुराण

भगवान् वृषभदेव ने अपने ग्रहस्थावस्था के समय अपने पुत्र-पुत्रियों को चित्रकलादि अनेक शोभासहित कलाओं का निरूपण किया। अतः कलाओं का ज्ञान और उनका प्रचलन और उससे मनुष्य की श्रेष्ठता अनादिकालीन है।

विद्यावान् पुरुषोलोके संमतिं याति को विदैः।

नारी च तद्धती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदम्।।98।। 16 वर्ग आदिपुराण

इस लोक में विद्यावान् पुरुष पण्डितों के द्वारा भी सम्मान को प्राप्त होता है और विद्यावान् स्त्री भी सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करती है।

विद्या और कला से रहित व्यक्ति पशु के समान कहा है –

साहित्य संगीत कलाविहीनः।

साक्षात्पशु पुच्छ विषाणहीना।। भर्तृहरि नीति

साहित्य, संगीत आदि कला से रहित पुरुष सींग, पूंछ के बिना साक्षात् पशु के समान है।

कला का विशेष महत्त्व और कला की कुशलता व्यक्ति को महान् और श्रेष्ठ बनाती है। नीतिकारों ने भी कलाओं का कथन करते हुए उनके भेद भी बताये हैं।

कला बहत्तर पुरुष की, तामें दो सरदार,

एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार।।

पुरुष की बहत्तर और स्त्रियों की चौसठ कलायें बताई हैं। इनमें आजीविका और आत्मकल्याण की कला को प्रमुख कहा गया है।

प्रस्तुत कृति में आचार्य भगवन् श्री 108 वसुन्दी महाराज ने मनुष्य की कलाओं का स्वरूप, उद्देश्य और उसके फल आदि को प्राकृत भाषा में निबद्ध कर उसके हिन्दी अर्थ को प्रस्तुत किया है जिससे जनसामान्य

लाभान्वित तो होगा ही साथ ही अपना गार्हस्थिक जीवन भी सुखमय व्यतीत करेंगे।

पूज्य आचार्य श्री ने कला विज्ञान नामक कृति में कला का महात्म्य बताते हुए लिखा कि –

पउमं विणा तडागं, जह जह रयणायरो विणा रयणं।
जलं विणा सरिदा सक्कलं विणा मण्णे समायो।। 9 ।।

जिस प्रकार कमल के बिना सरोवर, रत्नों के बिना रत्नाकर, जल के बिना सरिता नहीं होती है उसी प्रकार सत्कला के बिना समाज मानी जाती है।

इस प्रकार कला विज्ञान अर्थात् कलाओं का विशिष्ट ज्ञान प्राकृत गाथाओं में संजोया है। अभी तक कलाओं के विषय में जनश्रुतियाँ थी या कहीं ग्रन्थों में इनके नाम प्राप्त हो जाते थे किन्तु पूज्य आचार्य भगवन् ने कलाओं के विस्तृत स्वरूप का उल्लेख कर लोकोपकारी विद्याओं के स्वरूप को प्रकाशित कर अनन्य उपकार किया है, जो युगों-युगों तक ज्ञानवर्धन का कारण बनेगा।

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
1.	मंगलाचरण	1-2	01
2.	ग्रंथ-कथन-हेतु	3-4	02
3.	कला बिना विकास नहीं	5	02
4.	कला सम्मान से देश समृद्ध	6	02
5.	संस्कृति के प्राण-सत्कला	7	03
6.	कला से शोभा	8	03
7.	कला का महत्त्व	9-11	03
8.	षट्कला उपदेश	12	04
9.	श्रावक व श्रमण धर्मोपदेश	13	05
10.	श्री ऋषभदेव द्वारा शिक्षा निर्देश	14-18	05-06
11.	कला कथन प्रतिज्ञा	19	07
12.	नर व नारी कला कथन क्रम	20-21	07
	पुरुषों की 72 कलाएँ		
13.	आजीविका कला	22-24	08
14.	लेखन कला	25-27	09
15.	रूप कला	28-31	09-10
16.	नृत्य कला	32-35	10-11
17.	रत्न परीक्षण कला	36	11
18.	गणित कला	37-39	12
19.	गीत कला	40-42	13
20.	पुष्करगत कला	43-44	14

क्र.सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
21.	समताल कला	45-46	14-15
22.	जनवाद कला	47-49	15
23.	पहेलिका कला	50-52	16
24.	अन्नपान कला	53-54	17
25.	नर-नारी लक्षण कला	55-60	17-18
26.	धातु परीक्षण कला	61	19
27.	उदकमृत्तिका कला	62-64	19
28.	सकल भाषा कला	65-66	20
29.	हस्ति प्रशिक्षण कला	67-69	20-21
30.	अश्व प्रशिक्षण कला	70-72	21-22
31.	गज परीक्षण कला	73-75	22-23
32.	अश्व लक्षण कला	76-77	23
33.	मणि लक्षण कला	78-80	24
34.	नगर मान निवेशन कला	81-89	25-27
35.	स्कंधवार मान निवेशन कला	90-94	27-28
36.	वास्तुमान निवेशन कला	95-99	29-30
37.	वाणिज्य कला	100-102	30-31
38.	कृषि कला	103-106	31-32
39.	काकिणी लक्षण कला	107-109	32
40.	वाहन संचालन कला	110-112	33
41.	जलतरणी कला	113-114	34
42.	यंत्र निर्माण कला	115-118	34-35
43.	मंत्र निर्माण कला	119-124	35-37
44.	वस्त्र निर्माण कला	125-126	37
45.	आभूषण निर्माण कला	127	38

क्र.सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
46.	चर्म लक्षण कला	128-131	38-39
47.	अभिनय कला	132-134	39
48.	आजिकला	135-137	40
49.	शकुनापशकुन कला	138-140	40-41
50.	रहस्यगत कला	141-143	41-42
51.	कविता कला	144-147	42-43
52.	छंद विचार कला	148-152	43-44
53.	रस परीक्षा कला	153-155	45
54.	ज्योतिष कला	156-161	46-47
55.	वैद्यक कला	162-169	47-49
56.	योग कला	170-173	49-50
57.	शिल्प कला	174-177	50-51
58.	इंद्रजाल कला	178-180	51-52
59.	राज्य सेवा कला	181-183	52-53
60.	दृष्ट परीक्षा कला	184	53
61.	नीत कला	185-186	53
62.	विलेपन कला	187	54
63.	व्यूह-प्रतिव्यूह कला	188-189	54
64.	शस्त्र लक्षण कला	190	54
65.	आयुध ग्रहण संचालन कला	191-194	55
66.	छेद्य कला	195	56
67.	वनोत्पत्ति कला	196	56
68.	पशु वशीकरण कला	197-198	56-57
69.	प्रतिचार कला	199-200	57
70.	पशु लक्षण कला	201	57
71.	राजचिह्न कला	202	58

क्र.सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
72.	सौभाग्यकर कला	203	58
73.	दौर्भाग्यकर कला	204	58
74.	ग्रह संचार कला	205	59
75.	पठन कला	206	59
76.	सफलकरण कला	207	59
77.	अफलकरण कला	208	59
78.	खेल कला	209	60
79.	पशु पालन कला	210-213	60-61
80.	धर्म कला	214-216	61
81.	सजीव-निर्जीव कला	217	62
82.	जलाकर्षण कला	218	62
83.	सौंदर्य प्रसाधन निर्माण कला	219	62
84.	लोकाचार कला	220	62
	नारी की 64 कलाएँ		
85.	बहुगुण युक्त नारी कला	221	63
86.	संगीत कला	222-230	63-65
87.	वाद्य कला	231-232	65
88.	नृत्यकला	233	65
89.	रसकला	234	66
90.	लिपि कला	235-238	66-67
91.	उक्ति कौशल कला	239-247	67-68
92.	आस्वाद्य विज्ञान कला	248-256	69-71
93.	पानक निर्माण कला	257	71
94.	क्रीड़ा कला	258-259	71
95.	गंधयोजन निर्माण कला	260-267	72-73

क्र.सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
96.	चित्रकला	268-271	73-74
97.	कढ़ाई कला	272	74
98.	रंगना कला	273	74-75
99.	मान कला	274-275	75
100.	संवाहन कला	276-280	75-76
101.	पुस्तकर्म कला	281-283	77
102.	पत्रच्छेद कला	284-286	77-78
103.	माल्य निर्माण कला	287-289	78-79
104.	विमोहन कला	290	79
105.	नर परीक्षण कला	291-292	79
106	नारी परीक्षण कला	293-294	80
107.	रत्न परीक्षण कला	295-296	80
108.	धातु परीक्षण कला	297-298	81
109.	परिकर्म कला	299	81
110.	लीला चाल कला	300	81
111.	वस्त्र परीक्षण कला	301	82
112.	समस्यापूर्ति कला	302	82
113.	लोकज्ञता कला	303	82
114.	वेष कौशल कला	304-305	83
115.	भाषा कला	306	83
116.	लेखन कला	307	83
117.	निधि कला	308	84
118.	उपकरण निर्माण कला	309	84
119.	व्यापार कला	310	84
120.	रूप कला	311	84

क्र.सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
121.	दर्शन कला	312	85
122.	व्यवहार कला	313	85
123.	चूर्ण कला	314	85
124.	गृहाचार कला	315	85
125.	मर्म विचार कला	316	86
126.	धर्म प्रवृत्ति कला	317	86
127.	लाघव कला	318-319	86
128.	अतिथि सेवा कला	320-321	87
129.	वंशवृद्धि कला	322	87
130.	जीव विज्ञान कला	323-324	87
131.	भूतिकर्म कला	325	88
132.	निमित्तज्ञान कला	326	88
133.	काव्य कला	327-328	88
134.	युद्ध कला	329	89
135.	संचालन कला	330-331	89
136.	औषधि कला	332-334	89-90
137.	पशुपालन कला	335	90
138.	जलतरणी कला	336	90
139.	वास्तुकला	337	91
140.	गणित कला	338	91
141.	ज्योतिष कला	339	91
142.	आयुध ग्रहण कला	340	91
143.	पठन कला	341	92

144.	शल्य चिकित्सा कला	342-343	92
145.	शयन विधि कला	344	92
146.	तरुणी परिकर्म कला	345	92-93
147.	लालन पालन कला	346	93
148.	वस्त्राभूषण कला	347	93
149.	केशसज्जा कला	348	93
150.	सुखद जीवनार्थ कला	349-351	93-94
151.	जीवन में कला	352-353	94
152.	कलाहीन मनुष्य	354-355	94-95
153.	कलायुक्त प्रशंसनीय	356	95
154.	कला ग्रहण प्रेरणा	357-359	95
155.	कला से शोभा	360-361	96
156.	अंतिम मंगलाचरण	362-369	96-97
157.	ग्रंथकार की लघुता	370	98
158.	प्रशस्ति	371-372	98

कला-विण्णाणं

(कला विज्ञान)

मंगलाचरण

सव्वकलाणाणजुदं, सम्मत्ताइ-अणंतगुणसहिदं च।
वंदित्ता परमप्पं, वोच्छे हं कलाविण्णाणं।।1।।

अर्थ–सर्व कला व ज्ञान से युक्त एवं सम्यक्त्व आदि अनंत गुणों से सहित परमात्मा की वंदना करके मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) **'कला-विज्ञान'** नामक ग्रंथ को कहूँगा।।

णाणकलासंजुत्ता, अरिहा सिद्ध-सूरि-पाढग-साहू।
सव्वहिदकरा णिच्चं, णमंसामि सवर-हिदत्थं च।।2।।

अर्थ–ज्ञान कला से संयुक्त, सर्व हितंकर अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधुओं को स्वपर हित के लिए नित्य नमस्कार करता हूँ।

ग्रंथ-कथन-हेतु

सव्वविज्जज्झयण-विहि-जुदाणि पुण्णकलापडिपायगाणि।
पणमित्ता सत्थाइं, कला-वण्णिदुं लद्धेदुं च।।3।।
सक्कला-सब्भदा-सक्किदि-समाय-विज्जाणं रक्खत्थं।
वड्ढणत्थं वोच्छामि, विणासणट्ठं कुविज्जाणं।।4।।

अर्थ–सर्व विद्या, अध्ययन विधि से युक्त, संपूर्ण कला के प्रतिपादक शास्त्रों को नमस्कार करके कला के वर्णन व उनकी प्राप्ति के लिए, सत्कला, सभ्यता, संस्कृति, समाज, सुविद्या के रक्षण व वर्द्धन के लिए एवं कुविद्या के विनाश के लिए इस ग्रंथ को कहता हूँ।

कला बिना विकास नहीं

मूलं विणा रुक्खस्स, ठिदि-विड्ढि-फलुप्पत्ती संभवो ण।
जह तह जण-जीवणस्स, विगासो ण सक्कलं विज्जं।।5।।

अर्थ–जैसे जड़ के बिना वृक्ष की स्थिति, वृद्धि, फलोत्पत्ति संभव नहीं है उसी प्रकार सत्कला व सद्विद्या के बिना जन जीवन का विकास संभव नहीं है।

कला सम्मान से देश समृद्ध

सुकला-कलायाराण, हवेदि सम्माणं जम्मि देसम्मि।
तम्मि हु णाणवड्ढणं, सुभिक्ख-माणंदो समिद्धी।।6।।

अर्थ–जिस देश में सुकला व कलाकारों का सम्मान होता है वहाँ ज्ञान वर्द्धन, सुभिक्ष, आनंद व समृद्धि होती है।

संस्कृति के प्राण - सत्कला

सक्कला विज्जुदव्व य, सामण्णणरा उवयरणं व तस्स।
सा पाणोव्व दु समाय-सुहदजीवण-सक्किदीणं च।।7।।

अर्थ–सत्कला विद्युत (electricity) के समान है और सामान्य नर उसके उपकरण के समान हैं। वह सत्कला समाज के सुखद जीवन व संस्कृति के लिए प्राण के समान है।

कला से शोभा

गगणं चंदेण विणा, तारगाहि विणा ण सोहदि चंदो।
जोदिं विणा हु जोदिस-गहा कलाइ विणा समायो।।8।।

अर्थ–जिस प्रकार चंद्रमा के बिना गगन, तारों के बिना चंद्र, ज्योति के बिना ज्योतिष ग्रह शोभित नहीं होते उसी प्रकार कला के बिना समाज सुशोभित नहीं होती।

कला का महत्व

पउमं विणा तडागं, जह तह रयणायरो विणा रयणं।
जलं विणा सरिदा सक्कलं विणा मण्णे समायो।।9।।

अर्थ–जिस प्रकार कमल के बिना सरोवर, रत्नों के बिना रत्नाकर, जल के बिना नदी होती है उसी प्रकार सत्कला के बिना समाज मानी जाती है।

दीवेहि विणा दीवुच्छवो रंगं विणा रंगावली य।
सुकलं विणा समायो, तह मिट्ठं विणा मिट्ठाणं।।10।।

अर्थ–जिस प्रकार दीपों के बिना दीपोत्सव, रंगों के बिना रंगोली व मीठे के बिना मिष्ठान्न होता है उसी प्रकार सुकला के बिना समाज जाननी चाहिए।

आणणं विणा देहो, णयणं विणा आणणं भासदि जह।
जोदिं विणा णयणं च, तह सक्कलं विणा समायो।।11।।

अर्थ–जिस प्रकार मुख के बिना देह, नयन के बिना मुख व ज्योति के बिना नयन होते हैं उसी प्रकार सत्कला के बिना समाज होती है।

षट्कला उपदेश

तित्थयर-उसहजिणेण, असि-मसि-किसि-वाणिज्ज-विज्जा कला।
सिप्पकला उवदिट्ठा, सव्वहिदाय जुगपारंभे।।12।।

अर्थ–युग के प्रारंभ में तीर्थंकर श्री ऋषभदेव द्वारा सबके हित के लिए असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या व शिल्प कला का उपदेश दिया गया।

श्रावक व श्रमण धर्मोपदेश

सावयसमणधम्मा य, णिद्दिट्ठा पढमतित्थयरुसहेणं।
तस्सुवदेसेण विणा, सहिदत्थं ण समत्थो को वि॥13॥

अर्थ–प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के द्वारा श्रावक व श्रमण धर्म निर्दिष्ट किए गए। उसके उपदेश के बिना कोई भी स्वहित के लिए समर्थ नहीं है।

श्री ऋषभदेव द्वारा शिक्षा निर्देश

णिद्दिट्ठा वरसिक्खा, उसहेण णियपुत्ताण पयाए य।
कम्मभूमि-पारंभे, अवसाणे सुसमदुस्समाइ॥14॥

अर्थ–सुखमा-दु:खमा के अवसान काल व कर्मभूमि के प्रारंभ में श्री ऋषभदेव ने अपने पुत्रों व प्रजा के लिए उत्कृष्ट शिक्षा निर्दिष्ट की।

पुण्णलोगिगसुविज्जा, सव्वकला दयिदा ससंताणाण।
बंभीए बंभलिवी, सुंदरीए गणिदविज्जा य॥15॥

अर्थ–श्री ऋषभदेव के द्वारा संपूर्ण लौकिक विद्या व सर्व कला अपनी संतानों के लिए दी गई। पुत्री ब्राह्मी के लिए ब्रह्मलिपि व सुंदरी के लिए गणित विद्या दी।

पढमचक्किभरदस्स दु, भरदखेत्तस्स य अत्थसत्थाणं।
आदिदेवेण दयिदा, सिक्खा रज्जसंचालणस्स॥16॥

अर्थ–श्री आदिदेव के द्वारा अपने प्रथम पुत्र व भरतक्षेत्र के प्रथम चक्रवर्ती भरत के लिए अस्त्र-शस्त्र व राज्य संचालन की शिक्षा प्रदान की गई।

विदियसुपुत्त-दोरबलि-बाहुबलिकामदेवस्स दाहीअ।
रट्ठसेवा-सिक्खं च, जोदिसविज्जं गंधव्वं वि॥17॥

अर्थ–श्री ऋषभदेव ने अपने द्वितीय पुत्र प्रथम कामदेव दोरबली या बाहुबली को राष्ट्र सेवा की शिक्षा, ज्योतिष विद्या और गंधर्व विद्या भी प्रदान की।

उसहसेणस्स अणंत-वरवीरिय-विस्सकम्मादीणं च।
जहाजोग्ग-बहुविज्जा, दाहीअ सवर-हिद-समत्था॥18॥

अर्थ–श्री ऋषभदेव ने अपने पुत्र वृषभसेन, अनंतवीर्य, वरवीर्य व विश्वकर्मा आदि के लिए स्वपर हित में समर्थ यथायोग्य बहुत विद्याएँ दीं।

कला कथन प्रतिज्ञा

पुरिसाण बाहत्तरी, चउसट्ठि-कला णारीण वण्णेमि।
जह उसहेण वण्णिदा, तहेव हं सवर-हिदत्थं च॥19॥

अर्थ–जिस प्रकार श्री ऋषभदेव के द्वारा पुरुषों की बाहत्तर कला व स्त्रियों की चौंसठ कला का वर्णन किया गया उसी प्रकार स्वपर हित के लिए मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) उन कलाओं का वर्णन करता हूँ।

नर व नारी कला कथन क्रम

वण्णिज्जदे णरकला, पुव्वे पुरिसो जं पुरू सव्वेसु।
सक्कलाउ इत्थीणं, तहवि वोच्छे विदिय-ठाणम्मि॥20॥
जहवि संपइयालम्मि, रट्ठसेविगा णारी वि पुरिसोव्व।
देसुण्णदिकारगा य, धम्मपहाविगा हवंति सय॥21॥

अर्थ–यहाँ पहले नर अर्थात् पुरुषों की कला का वर्णन किया जाता है क्योंकि सभी में पुरुष पुरु अर्थात् श्रेष्ठ है। यद्यपि वर्तमानकाल में नारियाँ पुरुष के समान राष्ट्र की सेविका हैं। वे सदा देश की उन्नतिकारक व धर्म प्रभाविका होती हैं तथापि दूसरे स्थान पर स्त्रियों की सत्कलाओं को कहूँगा।

पुरुषों की 72 कलाएँ

1. आजीविका कला

धणमज्जावदि जा सा, णिरवज्जेणमप्पसावज्जेणं।
उदरपुण्णगा अत्थुप्पादिग-कला आजीविगा दु॥22॥

अर्थ—जो निरवद्य या अल्प सावद्य रूप से धन का अर्जन कराती है वह उदर पूर्ति व अर्थोपार्जन करने वाली आजीविका कला है।

सेवा-सिप्प-वाणिज्ज-किसि-विज्जा-सत्थसंचालणेहिं।
सुसिक्खाइ-दाणेणं, धणज्जण-माजीविगा कला॥23॥

अर्थ—सेवा, शिल्प, वाणिज्य, कृषि, विद्या, शस्त्र संचालन, सुशिक्षादि देने के द्वारा धन का अर्जन करना आजीविका कला है।

सगासिद-पालणत्थं, णायेण धणं अज्जदि जो धम्मी।
ववहारिओ सो कला-णिउणो समायसेवगोअवि॥24॥

अर्थ—जो अपने आश्रितों का पालन करने के लिए न्यायपूर्वक धन का अर्जन करता है, वह धर्मी, व्यावहारिक, कला में निपुण समाज सेवक भी होता है।

2. लेखन कला

भावाण वत्ति-हेदू, जाणिज्जंति अणेयविहा भासा।
फुडसुंदरक्खराणं, ठवणं लेहणकला णेया।।25।।

अर्थ–भावों की अभिव्यक्ति की हेतु भाषा अनेक प्रकार की जानी जाती हैं। स्पष्ट, सुंदर अक्षरों की स्थापना करना लेखन कला जाननी चाहिए।

कट्ठ-घड-पड-भित्तीसु, गोहूम-चणग-सिद्धत्थ-वीयेसु।
धादु-आदीसुं सरल-वक्क-पंतीइ बहुभासासु।।26।।
आगरिसग-सुलेहणं, लहुदीहाइविहिण्णपयारेणं।
अणेगाकिदि-वण्णेसु, अणुवम-लेहणकला णेया।।27।।

अर्थ–लकड़ी, घट, वस्त्र, दीवार, गेहूँ, चने, चावल, बीज, धातु आदि पर बहुत सी भाषाओं में, सरल या वक्र पंक्ति में, लघु-दीर्घादि विभिन्न प्रकार से, अनेक आकृति व वर्णों में आकर्षक सुंदर लेखन करना अनुपम लेखनकला जाननी चाहिए।

3. रूपकला

धूलि-सारिस-रसाणं, चित्तंकणं च विसेसरूवेणं।
रूवकला णादव्वा, भावहिवत्ति-कारणं सा वि।।28।।

अर्थ–विशेष रूप से धूलि चित्र, सदृश चित्र व रसों के चित्रों का अंकन करना रूप कला जाननी चाहिए। वह भावाभिव्यक्ति का भी कारण है।

मिदिगा-तिल्ल-णीरेसु, रेहा-वण्णाइ-आलेहकरणं।
विअसिद-चित्तकला सा, जत्थ तत्थ होदि समिद्धी दु।।29।।

अर्थ–मिट्टी, तेल, पानी आदि पर रेखा, वर्णादि आलेख खींचना चित्रकला है। वह जहाँ विकसित होती है वहाँ नियम से समृद्धि होती है।

गिहुड्ढहेट्ठिम-भागे, भित्ति-थंभ-वेदिगा-सिहरादीसु।
कट्ठ-धादु-पत्त-भूमि-पड-खिल्लणाइ-उवयरणेसु।।30।।
पाणीण देहेसु वा, अणेगविह-पुप्फाइवण्णेहिं वि।
सुहचित्त-णिम्माणणं, चित्तकला संबुज्झिदव्वा।।31।।

अर्थ–घर के ऊर्ध्व व निचले भाग में, दीवार, स्तंभ, वेदि, शिखर आदि पर, काष्ठ, धातु, कागज, भूमि, वस्त्र खिलौने आदि उपकरणों पर अथवा प्राणियों के शरीर पर अनेक प्रकार की पुष्पादि वर्णों के द्वारा शुभ चित्रों का निर्माण करना चित्रकला जाननी चाहिए।

4. नृत्य कला

सदेसीय-विदेसीय-सणेगभावभंगिमा णच्चकला।
मणरंजणारोग्गाण, कारणं रट्ठसमिद्धीए।।32।।

अर्थ–अनेक भाव भंगिमा से युक्त स्वदेशीय या विदेशीय नृत्य कला है। वह मनोरंजन, आरोग्य व राष्ट्र समृद्धि का कारण है।

णच्चकला बेविहा दु, णाडयमणाडयं मिदुं रुक्खं च।
तहा इत्थिपुरिसाणं-जोग्गं लोयं सत्थणिज्जं॥33॥

अर्थ–नृत्यकला दो प्रकार की है–नाट्ययुक्त, नाट्यरहित अथवा मृदु व रूक्ष अथवा स्त्री योग्य नृत्य व पुरुष योग्य नृत्य अथवा लोकनृत्य व शास्त्रीय नृत्य।

सूई बंसू लस्सं, पुत्तली बहुरूविणी अंगुट्ठं।
कडक्खमलादचक्कं, णिक्कमणमिंदजालादी य॥34॥
भिण्ण-भिण्ण-खेत्तेसुं, विभिण्ण-विहाजुदं हवेदि णच्चं।
एवंविह णच्चकला, अणेगविहा वि मुणेदव्वा॥35॥

अर्थ–भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सूची नृत्य, बांसु, लास्य, पुतली, बहुरूपिणी, अंगुष्ठ, कटाक्ष, अलातचक्र, निष्क्रमण, इंद्रजाल आदि विभिन्न विधाओं से युक्त नृत्य होता है। इस प्रकार नृत्यकला अनेक प्रकार की भी जाननी चाहिए।

5. रत्न परीक्षण कला

मुक्खरयणाणि णवहा, चुलसीदि-उवरयणाइं ताइं वि।
बहुहा जाइ कलाए, णंते रयण-परिक्खणं सा॥36॥

अर्थ–मुख्य रत्न नौ प्रकार के व उपरत्न चौरासी प्रकार के होते हैं। वे भी बहुत प्रकार के होते हैं। जिस कला से उन्हें जानते हैं वह रत्न परीक्षण कला जानी जाती है।

6. गणित कला

अंकबीयरेहाणं, गणिदणाणं होदि कलाइ जाए।
पुण्णरूवेण सा खलु, सुह-गणिद-कला मुणेदव्वा।।37।।

अर्थ–जिस कला से अंक गणित, बीज गणित व रेखागणित का पूर्णरूप से ज्ञान होता है। वह निश्चय से शुभ गणित कला जाननी चाहिए।

गणणाए समाहाण-गहणं गणिद-कला हु मुणेदव्वा।
महातक्कसत्थमिदं, पमाणिगं सया णायजुदं।।38।।

अर्थ–गणना के द्वारा समाधान ग्रहण करना सदा गणितकला जाननी चाहिए। यह गणित महातर्क शास्त्र, प्रमाणिक व न्याययुक्त है।

सव्वुवादेयं वुड्ढि-वड्ढगं सस्सद-सिद्धंत-गणिदं।
जे ण णंति गणिदं ते, कहं णायं सिद्धंताइं।।39।।

अर्थ–गणित शाश्वत सिद्धांत, सभी के द्वारा उपादेय, बुद्धिवर्द्धक है। जो गणित को नहीं जानते वे न्याय, सिद्धांतादि को कैसे जान सकते हैं? अर्थात् नहीं जान सकते।

7. गीत कला

सत्तसरेहि संजुदा, तह णाणालाव-विविह-भावेहिं।
सुंदर-सुह-सारभूद-गायणरूवा हु गीदकला।।40।।

अर्थ–सात स्वरों, नाना आलाप तथा विविध भावों से युक्त सुंदर, शुभ, सारभूत निश्चय से गीत कला जाननी चाहिए।

सत्तसरावेक्खाए, गीदकलाए होंति सत्तभेया।
अण्णपयारेणं तह, अणेगभेया वि णादव्वा।।41।।

अर्थ–सात स्वरों की अपेक्षा गीत कला के सात भेद होते हैं। अन्य प्रकार से उसके अन्य भेद भी जानने चाहिए।

दीव-मलहार-भेरव-गंधव्व-मालकोसाइ-रागाण।
सिंगाराइ-रसाणं, भेयेणं चिय अणेगविहा।।42।।

अर्थ–दीप, मलहार, भैरव, गंधर्व, मालकोश आदि राग व श्रृंगारादि रसों के भेद से गीतकला अनेक प्रकार की है।

8. पुष्करगत कला

णाणाविहवज्जाणं, तंति-दुंदुहि-वंसि-पडहादीणं।
वादणम्मि जो कुसलो, पुक्करगद-कलाजुत्तो सो।।43।।

अर्थ–जो नाना प्रकार के वाद्य यंत्र जैसे वीणा, दुंदुभि, बांसुरी, ढोल आदि के बजाने में कुशल है वह पुष्करगतकला से युक्त जानना चाहिए।

मिदिगा-कट्ठ-पासाण-खंड-सुत्त-धादु-आइ-णिम्मिदं दु।
सव्ववज्जजंतं जो, वायणे कुसलो सो विरलो।।44।।

अर्थ–जो मिट्टी, लकड़ी, पाषाणखंड, धागा, धातु आदि से निर्मित सभी वाद्ययंत्रों के वादन में कुशल होता है वह कोई विरला ही होता है।

9. समताल कला

कर-पद-कडि-आदीणं, गदि-साहणं ताल-सरणुसारेण।
समतालकला हेदू, चित्ताणंद-सुत्थाण जाण।।45।।

अर्थ–ताल व स्वर के अनुसार हाथ, पैर, कमर आदि की गति को साधना समताल कला है। वह चित्त के आनंद और स्वस्थता का कारण जानो।

होदि सव्वेगरूवे, वादण-णच्च-तालं ताइ कलाइ।
कस्स चित्तं ण मोहदि, मणरंजग-पिय-कला चिय सा।।46।।

अर्थ–उस समताल कला में वादन, नृत्य, ताल सब एकरूप होते हैं। वह मनोरंजक, प्रिय कला किसके चित्त को मोहित नहीं करती? अर्थात् सबका चित्त मोहती है।

10. जनवाद कला

रहण-सहण-वत्ताणं, देह-बुद्धि-संठिदि-अण्णपाणाण।
जणवादकला णेया, णाणं देदि जा सा णरस्स।।47।।

अर्थ–जो कला मनुष्य के रहन-सहन, वार्ता, शरीर, बौद्धिक स्तर, अन्न-पानादि का ज्ञान देती है वह जनवाद कला जाननी चाहिए।

खाणपाणरुइं वि तव-वद-चाग-रुइं परादो विरत्तिं।
कत्तव्वभावणं तह, देसभत्ति-आदि-भावणं दु।।48।।
णिट्ठं दयाधम्मं च, देव-सुद-गुरुवासणाए भावं।
सत्तिं गुणसीलधम्म-मीहं वि णादि कला-कुसलो।।49।।

अर्थ–जनवाद कला में कुशल नर लोगों की खानपान की रुचि, तप, व्रत व त्याग की रुचि, पर से विरक्ति, कर्त्तव्य पालन की भावना, देशभक्ति आदि की भावना निष्ठा, दयाधर्म, देव-शास्त्र-गुरु की उपासना के भाव, शक्ति, गुण-शील-धर्म, चेष्टा (ईहा) को भी जान लेता है।

11. पहेलिका कला

पहेलियाण पुच्छणे, बहुगज्जपज्जगणिदाइ रूवाण।
पहेलिया कला-जुदो, पडिमंतणे णिउणो जो सो॥50॥

अर्थ—जो बहुत सी गद्य, पद्य, गणित आदि रूप पहेलियों के पूछने में व उत्तर देने में निपुण है वह पहेलिका कला से युक्त है।

गूढत्थ-रहस्स-जुत्त-गुत्त-संदेसभावं णादुं वा।
पुच्छिदुं जो समत्थो, सो णिउणो इमाइ कलाए॥51॥

अर्थ—जो गूढ़ार्थ व रहस्य युक्त गुप्त संदेश-भाव को जानने व पूछने में समर्थ है वह इस प्रहेलिका कला में निपुण है।

गुत्तुत्तर-जुद-पण्हं, गणिदालेहाइ-सुसंबंधिदं च।
पुच्छणे बुज्झणे जो, कुसलो सो कला-संजुत्तो॥52॥

अर्थ—जो गणित, चित्र आदि से संबंधित व गुप्त उत्तर युक्त प्रश्न के पूछने व समझने में कुशल है वह प्रहेलिका कला से युक्त जानना चाहिए।

12. अन्नपानकला

होंति अण्णाइं मुग्ग-गोहूम-मासाइ-अणेगविहाइं।
तेहिं पइडि-अणुऊल-सादजुद-भोयणपयणम्मि य॥53॥
रस-सक्करा-लवणाइ-जुद-अणेगविह-पाणगदव्वाणं।
णिम्माणे जो कुसलो, सो अण्णपाणकलाजुत्तो॥54॥

अर्थ—गेहूँ, मूंग, उड़द आदि अनेक प्रकार के अन्न होते हैं। उनके द्वारा प्रकृति के अनुकूल व स्वाद से युक्त भोजन पकाने में तथा रस-शर्करा-नमक आदि से युक्त अनेक प्रकार के पानकद्रव्यों के निर्माण में जो कुशल है वह अन्नपानकला से युक्त जानना चाहिए।

13. नर-नारी लक्षण कला

देहलक्खणादीहिं, मज्झुत्तम-जहण्ण-दुट्ठसिट्ठाण।
णीयुच्चाण जणाणं, करिज्जदि णाणसमीचीणं॥55॥
जाए सेट्ठकलाए, सा णरणारिलक्खण-कला णेया।
पत्तेय-णरम्मि णेव, होदि संभवो दुल्लहा सा॥56॥

अर्थ—शारीरिक लक्षण आदि के द्वारा उत्तम, मध्यम, जघन्य या दुष्ट, शिष्ट अथवा नीच व उच्च जनों का समीचीन ज्ञान जिस श्रेष्ठ कला से किया जाता है वह नर-नारी लक्षण कला जाननी चाहिए। प्रत्येक मनुष्य के वह दुर्लभ कला संभव नहीं होती।

णादुं करलक्खणेहि, सामुद्दिग-सत्थाणुसारेणं दु।
णिमित्तणाणेणं वा, णरणारीणं गुणदोसं च॥57॥
ववहारं धम्मं कुल-जादिमिच्चाइं जो समत्थो सो।
णर-णारि-लक्खण-कला-संजुत्तो चिय पुण्णवंतो॥58॥

अर्थ—जो कर लक्षण, सामुद्रिक शास्त्रानुसार या निमित्त ज्ञान से स्त्री व पुरुषों के गुण-दोष, व्यवहार, धर्म, कुल व जाति इत्यादि को जानने में समर्थ है वह पुण्यवान् पुरुष नर-नारी लक्षण कला से संयुक्त है।

णरो तिविहो मुक्खेण, उत्तमो मज्झमो तहा जहण्णो।
ताण अणेगभोया वि, आगमेण मुणिय वत्तव्वा॥59॥

अर्थ—पुरुष मुख्य रूप से तीन प्रकार के हैं—उत्तम, मध्यम तथा जघन्य। उनके भी अनेक भेद हैं। आगम से जानकर उन्हें कहना चाहिए।

इत्थी चउविहा तहा, पउमिणि-हत्थिणी हंसिणी चित्ता।
बाहत्तरि-विहा जहाजोग्गं जाणेज्ज सत्थेहि वि॥60॥

अर्थ—स्त्रियाँ चार प्रकार की हैं—पद्मिनी, हस्तिनी, हंसिनी व चित्रा। स्त्रियाँ बाहत्तर प्रकार की भी होती हैं। यथायोग्य शास्त्रों से जानना चाहिए।

14. धातु परीक्षण कला

अणेगविहधादूणं, परिक्खणम्मि पवीणो चिय जो सो।
धादुरहस्सविमोअग-धादुपरिक्खणकलाजुत्तो॥61॥

अर्थ—जो अनेक प्रकार के धातुओं के परीक्षण में प्रवीण है उसे धातु के रहस्य का विमोचन करने वाली धातु परीक्षण कला से युक्त जानना चाहिए।

15. उदकमृत्तिका कला

भूमीइ जलणिण्णयं, मिदूए कुणेदुं सक्कदि जो सो।
उदग-मिदु-कलाए चिय, पवीणणरो पसंसणीयो॥62॥

अर्थ—जो मिट्टी से भूमि में जल का निर्णय करने में समर्थ होता है वह उदकमृत्तिका कला में प्रवीण नर प्रशंसनीय है।

मिदिगावण्णं दिट्ठा, तस्स रस-गंध-फासेहिं वा जो।
सब्भावं च अभावं, णीरस्स हिदाहिदरूवं दु॥63॥
भारिअं मिदुजलं वा, अण्णगुणदोसं तस्स अवि सादं।
समत्थो जाणिदुं सो, पारंगदो इमाइ कलाइ॥64॥

अर्थ—मिट्टी के वर्ण को देखकर अथवा उसके रस, गंध वा स्पर्श से जो जल के सद्भाव, अभाव, हिताहित रूप, उसके स्वाद वा अन्य गुण-दोष को अथवा पानी भारी है या हल्का आदि जानने में समर्थ होता है वह इस उदकमृत्तिका कला में पारंगद जानना चाहिए।

16. सकल भाषा कला

विस्सम्मि विज्जमाणा, बहुभासा विआणेदि जो पुरिसो।
सयलभासाकलाए, णिउणो सो चिय मुणेदव्वो॥65॥

अर्थ–जो पुरुष विश्व में विद्यमान बहुत भाषाओं को जानता है वह सकल भाषा कला में निपुण जानना चाहिए।

वयण-चउरिमा-जुत्तो, जो बोल्लिदुं विअड्ढो पडिबुद्धो।
बहुविहभासं जाणदि, सो बहुभासा-विण्ण-पुज्जो॥66॥

अर्थ–जो प्रतिबुद्ध, वचन चातुर्य से युक्त बोलने में निपुण है और बहुत प्रकार की भाषा को जानता है वह बहुभाषा विज्ञ पूज्य है, आदरणीय है।

17. हस्ति प्रशिक्षण कला

अणेगजादिहत्थीण, विविह-सिक्खेदुं समत्थो जो सो।
पवीणो मुणेदव्वो, हत्थि-पसिक्खण-कलाए चिय॥67॥

अर्थ–जो अनेक जाति के हाथियों को विविध शिक्षा देने में समर्थ है वह हस्ति प्रशिक्षण कला में प्रवीन जानना चाहिए।

भिण्ण-भिण्ण-देसेसुं, पइडी-गुण-जादि-बुद्धि-इच्चादी।
हवेदि गयाण भिण्णा, ताण सव्वाणं पुरिसो जो॥68॥
णाडय-जत्ता-किड्डा-जुद्ध-मणरंजणादीणं तहा दु।
पसिक्खणं दादुं सो, समत्थो पवीणो इमाए॥69॥

अर्थ—भिन्न-भिन्न देशों में हाथियों की प्रकृति, गुण, जाति, बुद्धि इत्यादि भिन्न-भिन्न होती है उन सभी हाथियों को जो नाटक, यात्रा, खेल, युद्ध, मनोरंजन आदि के लिए प्रशिक्षण देने में समर्थ है वह इस कला में प्रवीण है।

18. अश्व प्रशिक्षण कला

अणेगजादीणस्सा, पसिक्खिदं करेदुं समत्थो जो।
सो पुण्णवंतो णरो, अस्स-पसिक्खण-कला-जुत्तो॥70॥

अर्थ—जो अनेक जाति के अश्वों को प्रशिक्षित करने में समर्थ है वह पुण्यवान् नर अश्व प्रशिक्षण कला से युक्त जानना चाहिए।

णाणादेसेसुं विज्जंत-अस्साण कुल-गुणाइ-जुदाण।
णच्च-गमण-किड्डा-मणरंजण-जुद्धादीणं तहा।।71।।
स-सामिस्स सुहदुहाण, अणुभवस्स अवि अण्ण-अणेगविहं।
पसिक्खणं दादुं जो, समत्थो सो सुकला-कुसलो।।72।।

अर्थ—जो नाना देशों में विद्यमान कुल-गुण आदि से युक्त घोड़ों को नृत्य, गमन, क्रीड़ा, मनोरंजन तथा युद्ध आदि की तथा अपने स्वामी के सुख-दु:ख के अनुभव की व अन्य अनेक प्रकार की भी शिक्षा देने में समर्थ है वह इस अश्व प्रशिक्षण नामक सुकला में कुशल है।

19. गज परीक्षण कला

उत्तम-मज्झिम-जहण्ण-गया जाणेदि लक्खणेहि जो सो।
गयपरिक्खणकलाए, कुसलो सय संबुज्झिदव्वो।।73।।

अर्थ—जो लक्षणों के द्वारा उत्तम, मध्यम, जघन्य हाथियों को जान जाता है वह गज परीक्षणकला में सदा कुशल जानना चाहिए।

विसालकायुत्तंगो, सुंदर-दंत-सोंडाइ-अंगजुदो।
साहिमाणी बालेसु, बालोव्व बुड्ढेसु बुड्ढोव्व॥74॥
णिब्भीगो पसत्थगदि-संजुदो धीमाणो सामिभत्तो।
विविहकला-कुसलो जो, करो सुट्ठुकलाजुदो सो॥75॥

अर्थ—जो हाथी विशाल काय, उत्तुंग, सुंदर दांत, सूड़ादि अंग से युक्त, स्वाभिमानी बालकों में बालक के समान, वृद्धों में वृद्धों के समान, निर्भीक, प्रशस्त गति से युक्त, बुद्धिमान, स्वामीभक्त, विविध कला में कुशल है वह श्रेष्ठ कला से युक्त है।

20. अश्व लक्षण कला

आगिदिम्मि एग-रूव-हयाण होंति पइडी अणेयविहा।
जो णादि ताण पइडिं, अस्सलक्खणकलाजुदो सो॥76॥

अर्थ—आकृति में एक रूप अश्वों की प्रकृति अनेक प्रकार की होती है जो उनकी प्रकृति को जानता है वह अश्वलक्षण कला से युक्त जानना चाहिए।

उच्चो दिग्घो य सुदिढ-अंगजुदो अदम्म-उच्छाहजुदो।
तिव्वधावग-पुट्ठिमो, बहुगुणजुत्तुत्तमो अस्सो॥77॥

अर्थ—ऊँचा, दीर्घ (लंबा-चौड़ा) सुदृढ़ अंगों से युक्त, अदम्य उत्साही, तेज दौड़ने वाला, तीव्र धावक, पुष्ट आदि बहुत गुणों से युक्त उत्तम अश्व है।

21. मणि लक्षण कला

चंदक्ककंत-दगाइ-मणीउ पच्चभिजाणिदुं समत्थो।
जो सो संविदिदव्वो, मणिलक्खणकलासंजुत्तो॥78॥

अर्थ—जो चंद्रकांत, सूर्यकांत, स्फटिक आदि मणियों को जानने में समर्थ है वह मणि लक्षण कला से युक्त जानना चाहिए।

उक्किट्ठ-मज्झ-जहण्ण-तिविहा लोए मणी सुप्पसिद्धा।
गुण-कंति-उवओगित्त-आइ-भेयेण अणेगविहा॥79॥

अर्थ—लोक में मणि उत्कृष्ट, मध्यम व जघन्य रूप तीन प्रकार की प्रसिद्ध है। गुण, कांति, उपयोगिता आदि के भेद से वह अनेक प्रकार की भी है।

रयणं व मणी णेया, किण्णु णो केवलं चिय बहुमुल्लं।
अण्ण-विसेस-कज्जेसु, ताइ माहप्पं णंति बुहा॥80॥

अर्थ—मणि रत्न के समान जाननी चाहिए। किन्तु वह उनके समान केवल बहुमूल्य नहीं है। बुधजन उसके माहात्म्य को अन्य विशेष कार्यों में जानते हैं।

22. नगर मान निवेशन कला

पुर-गाम-मडंब-दोण-णयर-देस-महाणयरादीणं च।
समुचिद-माणप्पमाण-णाणसंजुदो सुरयणाए॥81॥
ताणं णिवेसण-णाण-संजुत्तो कलापवीणो णेयो।
विस्सम्मि पसंसणीय-णयरमाणणिवेसणस्स चिय॥82॥

अर्थ—जो पुर, ग्राम, मडंब, द्रोण, नगर, देश, महानगर आदि की सुरचना में समुचित मान-प्रमाण के ज्ञान से संयुक्त एवं उनके बसाने के ज्ञान से युक्त है वह विश्व में प्रशंसनीय नगर मान-निवेशन की कला में प्रवीण जानना चाहिए।

वत्थुसत्थणुसारेण, होज्जा पुव्वोत्तर-दिसा णयरस्स।
सुद्ध-सीयला य तत्थ, उज्जाणं जलठाणमादी॥83॥
दक्खिणपच्छिमभागे, रायभवण-दुग्ग-मुत्तुंगसदणं व।
णयर-भवणादीणं च, तब्भागो उच्चो होज्जा दु॥84॥

अर्थ—वास्तु शास्त्र के अनुसार नगर की पूर्व व उत्तर दिशा शुद्ध व शीतल होनी चाहिए। वहाँ उद्यान व जलस्थान आदि हों। दक्षिण व पश्चिम भाग में राजभवन दुर्ग या उत्तुंग सदन होने चाहिए। नगर व भवनादिकों का वह भाग ऊँचा होना चाहिए।

उत्तरे विज्जालयं, पच्छिमे अण्णाइ-भंडाआरो।
दक्खिणे आउहगिहा, रायभवणं मंदिरादी य॥85॥

अर्थ–उत्तर में विद्यालय, पश्चिम में अन्नादि के भंडार गृह, दक्षिण में आयुध गृह, राजभवन, मंदिरादि होने चाहिए।

गामीणपसु-सेवगा, ण कया वि वासएज्ज ईसाणाइ।
णो णेरईए तहा, ताण कज्जसत्ति-विद्धीए॥86॥

अर्थ–ग्रामीण पशुओं व सेवकों को उनके कार्य शक्ति की वृद्धि के लिए कभी भी ईशान या नैऋत्य में नहीं बसाना चाहिए।

हवेज्जा चउदिसासुं, मुक्खदारं णो विदिसासु कया वि।
रज्जपहं अण्णपहं, जहाजोग्गं णिम्मावेज्जा॥87॥

अर्थ–नगर के मुख्य द्वार चारों दिशाओं में होने चाहिए, विदिशाओं में कदापि नहीं। राजपथ व अन्य पथ यथायोग्य बनवाने चाहिए।

सव्वेसु होज्ज णीय-ईसाणाए उच्चा वायव्वा।
ताए तह अग्गेई, सव्वुच्चा णेरई णियमा॥88॥

अर्थ–सबसे नीचा ईशान कोण, उससे ऊँचा वायव्य कोण, उससे ऊँचा आग्नेय कोण व सबसे ऊँचा नियम से नैऋत्य कोण होना चाहिए।

गामणयरदेसादी, वासिदुं अण्ण-मसंखविहणाणं।
जो तं णादि सो णयर-णिवेसण-माणकला-जुत्तो॥89॥

अर्थ–ग्राम, नगर, देशादि को बसाने के लिए अन्य असंख्य प्रकार की जानकारी होती है। जो उसे जानता है वह नगर-निवेशन-मान कला से युक्त है।

23. स्कंधावार मान निवेशन कला

णाणजुदो आयामुच्छेहादीणं खंधणिवेसणस्स।
सेणाइ सुप्पबंधे, पवीणो पुरिसपुंगवो जो॥90॥
सो खंधावार-माण-णिवेसण-कलाए सय संजुत्तो।
बहुजणेहिं दु सिलाहणीयो चिय संबुज्झिदव्वो॥91॥

अर्थ–जो पुरुष पुंगव छावनियों के आयाम, उत्सेध आदि व उसे बसाने के ज्ञान से युक्त तथा सेना के सुप्रबंध में प्रवीण है वह बुधजनों के द्वारा श्लाघनीय स्कंधावार मान निवेशन कला से संयुक्त जानना चाहिए।

खंधावारं णिम्मावेज्ज संखणुसारेण वाहिणीइ।
सुगुणजुद-दोसहीणो, सो जय-कारणं वि रायस्स॥92॥

अर्थ—सेना की संख्यानुसार स्कंधावार का निर्माण कराना चाहिए। सुगुण युक्त व दोष से हीन वह राजा की विजय का कारण भी होता है।

अदण-पाणाइ-सुविहा, जत्थ संभवो णिम्माणेज्ज तत्थ।
खंधावारं सुहेण, जुद्धं करिदुं सक्का जेण॥93॥

अर्थ—जहाँ भोजन-पानादि की सुविधा संभव हो वहाँ स्कंधावार का निर्माण करना चाहिए जिससे सेना सुखपूर्वक युद्ध करने में समर्थ हो।

सुरक्खिद-ठाणम्मि चिय, सव्वपयारेणं होज्ज सुद्धो वि।
जलवाऊ आदी तह, जत्थ तं णिम्माणेज्ज तत्थ॥94॥

अर्थ—सर्व प्रकार से सुरक्षित स्थान पर जहाँ जलवायु आदि भी शुद्ध हो वहाँ उस स्कंधावार का निर्माण करना चाहिए।

24. वास्तुमान निवेशन कला

भवण-पासाद-गिहाण, पमाणस्स णिद्दोसणिम्माणस्स।
वत्थुसत्थणुसारेण, णाणं हवदि जस्स पुरिसस्स॥95॥
मंगल-सुह-पूद-वत्थुमाण-णिवेसणस्स कलाए सो दु।
संजुत्तो णादव्वो, सव्वाण सुहहेदू णियमा॥96॥

अर्थ—जिस पुरुष के भवन, प्रासाद, गृहों के प्रमाण का वास्तु शास्त्र के अनुसार निर्दोष निर्माण का ज्ञान होता है वह वास्तुमान निवेशन कला से युक्त जानना चाहिए। यह कला मंगलकारक, शुभ, पवित्र व सभी के लिए सुख की हेतु है।

महीइ पुण्णगिहंतं, जावइअ सुहद-विसेसत्तं होज्ज।
ताण णादु-वत्थुकला, दुहहारगा संति-कारगा॥97॥

अर्थ—भूमि से लेकर पूर्ण गृह तक जितनी सुखद विशेषताएँ हैं उन सबकी ज्ञाता वास्तुकला दु:खहारक व शांतिकारक है।

वत्थुकलाए णिउणो, वसेदि विविणे वि सुहाणंदेहिं।
वत्थुकलाइ विहीणो, असंतो अवि दुग्गादीसुं॥98॥

अर्थ—वास्तु कला में निपुण व्यक्ति वन में भी सुख व आनंद से निवास करता है जबकि वास्तु कला से विहीन महलादि में भी अशांत रहता है।

वसुविह-आयं जाणिय, माणपमाणं किच्चा सुविहीए।
णिद्दिसेज्जा दु अण्णा, इमा अवि जिणसासण-विज्जा॥99॥

अर्थ—आठ प्रकार की आय को जानकर, समीचीन विधि से मान-प्रमाण करके अन्यों का निर्देश करना चाहिए। यह भी जिनशासन की विद्या है।

25. वाणिज्य कला

णूण-मुल्ले कयित्ता, लाहिदुं विक्कयणं अहियमुल्ले।
वाणिज्ज-कला णेया, पुरिसस्स चिय सुहिजीवणस्स॥100॥

अर्थ—न्यून मूल्य पर वस्तुओं को खरीदकर लाभ के लिए अधिक मूल्य पर उनका विक्रय करना सुखी जीवन हेतु पुरुष की वाणिज्य कला जाननी चाहिए।

कुणदि सवाणिज्जं जो, दव्वखेत्तकालभावणुसारेण।
परोवयारी सो सग-धणज्जगा णरो णियमेणं॥101॥

अर्थ—जो द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव से अनुसार अपना व्यापार करता है वह परोपकारी नियम से स्वधन का अर्जक होता है।

पासाण-धादु-मिदिगा-कट्ठ-वाहणादि-रूवणेगविहं।
वाणिज्जं जो तेसुं, णिउणो सो कला-संजुत्तो॥102॥

अर्थ—पाषाण, धातु, मिट्टी, लकड़ी, वाहनादि रूप अनेक प्रकार का व्यापार होता है। जो उनमें निपुण है वह कला से संयुक्त है।

26. कृषि कला

हवंते सडरिदूसुं, बहुफसला किसीवालेणं सो दु।
समयम्मि समयम्मि किसि-कज्ज-णिउणो किसिकलाजुदो॥103॥

अर्थ—कृषक के द्वारा षट्ऋतुओं में समय-समय पर बहुत सी फसल होती हैं। वह कृषि कार्य में निपुण-कृषक कृषि कला से युक्त है।

काण वीयाण होज्जा, आवसियं चिय अप्प-अहिय-णीरं।
अक्क-पयासो केरिस-खाद-जल-वाऊ आदी वा॥104॥
कस्स सस्सस्स हवेदि, उत्तमरूवा का मिदिगा अहवा।
मज्झिम-जहण्णरूवा, आवसियमिदं अवबोहो य॥105॥

अर्थ—किन बीजों के लिए सूर्य का प्रकाश, अल्प या अधिक जल अथवा किस प्रकार की खाद, जल, वायु आदि आवश्यक है। किस धान्य के लिए कौन सी मिट्टी उत्तम, मध्यम अथवा जघन्य रूप होती है, यह ज्ञान आवश्यक है।

आअंछणं सिंचणं, ववणं सस्सं रक्खिदुं वेढणं।
विआणदे जो पुरिसो, सो किसिकलाए संजुत्तो॥106॥

अर्थ–जो पुरुष जोतना, सींचना, बीज बोना, धान्यों की रक्षा के लिए बाड़ लगाना आदि जानता है वह कृषि कला से संयुक्त है।

27. काकिणी लक्षण कला

सव्वदेसेसु भिण्णा-भिण्णा-मुद्दा चिय पयलिदा जाण।
ताण परिक्खण-कुसलो, काकिणि-लक्खण-कला-जुत्तो॥107॥

अर्थ–सर्व देशों में भिन्न-भिन्न मुद्रा प्रचलित हैं। उनके परीक्षण में कुशल काकिणी लक्षण कला से युक्त है ऐसा जानना चाहिए।

धादु-पत्ताइ-णिम्मिद-मुद्दा पुध-पुध-आकिदि-वण्णाणं
पत्तेयदेसे होदि, तं जाणिदुं सुद्धासुद्धं॥108॥
जो सक्को सो णिउणो, काकिणि-लक्खण-कलाए णियमेण।
णउमच्छेदि दु अण्णा, वंचिज्जदि णो अण्णजणेहि॥109॥

अर्थ–प्रत्येक देश में धातु, कागज आदि से निर्मित पृथक्-पृथक् आकृति व वर्णों की मुद्रा होती हैं। जो उन्हें शुद्ध व अशुद्ध अर्थात् असली व नकली आदि जानने में समर्थ है वह नियम से काकिणी लक्षण कला में निपुण है। वह अन्यों को छलता नहीं है और ना अन्य जनों के द्वारा ठगा जाता है।

28. वाहन संचालन कला

एगाणेगचक्कजुद-बहुविहवाहण-संचालणम्मि जो।
कुसलो सो णादव्वो, वाहणचालणकलाजुत्तो॥110॥

अर्थ–एक या अनेक पहियों से युक्त बहुत प्रकार के वाहनों के संचालन में जो कुशल है वह वाहन संचालन कला से युक्त जानना चाहिए।

किंचिवि वाहणं जले, चलंति चिय आयासे भूमीए।
विज्जुदतिल्लादीहिं, अहवा दु अण्णपयारेणं॥111॥
पसुवाहणं वि होज्जा, उण्ह-सीद-पदेस-गिरि-आदीसुं।
तं चलाविदुं सक्को, जो सो संचालणकुसलो दु॥112॥

अर्थ–कुछ वाहन जल में, कुछ आकाश में, कुछ भूमि पर विद्युत तेल आदि के द्वारा अथवा अन्य प्रकार से चलते हैं। पशुवाहन भी होते हैं। ऊष्ण, शीत प्रदेश, पर्वत आदि पर वाहन होते हैं, उसे चलाने में जो समर्थ है वह वाहन संचालन कला में कुशल है।

29. जलतरणी कला

संतरिदुं सायर-णइ-तडाग-जलासय-इच्चाइं जो दु।
कुसलो सो णादव्वो, जलतरणि-कलाए पवीणो॥113॥

अर्थ—जो सागर, नदी, तालाब, जलाशय इत्यादि तैरने में कुशल है वह जलतरणी कला में प्रवीण जानना चाहिए।

आणपाण-णिरुंभिदुं, लुक्किदुं जुज्झिदुं दिविदुं जो सो।
पुध-पुध-मुद्दाइ जलं, तरिदुं सक्को कला-णिउणो॥114॥

अर्थ—जो पानी में श्वासोच्छ्वास रोकने, छिपने, युद्ध करने, खेलने एवं पृथक्-पृथक् मुद्रा युक्त जल में तैरने में समर्थ है वह जलतरणी कला में कुशल है।

30. यंत्र निर्माण कला

बहुविहवीयक्खरंक-आइजुद-जंत-णिम्माणेदुं जो।
कुसलो सो ताइ कला-सामी सुफलाय मंगलाय॥115॥

अर्थ—जो सुफल व मंगल के लिए बहुत प्रकार के बीजाक्षर, अंकादि से युक्त यंत्र के निर्माण करने में कुशल है वह उस कला का स्वामी जानना चाहिए।

सव्वभासाण अक्खर-पहावादीण णाणं जोअणस्स।
जस्स होदि तस्स जंत-णिम्माणकला अप्पडिमा हु॥116॥

अर्थ–सर्व भाषाओं के अक्षर, प्रभाव आदि व समायोजन का ज्ञान जिसके होता है उसके अप्रतिम यंत्र निर्माण कला है।

सुह-संति-कारगं तह, वत्तवड्ढगं कलहणिवारगं च।
अत्थुप्पाडण-कारग-मुण्णदि-कारगं चिय जंतं॥117॥
विज्जाणिहिवड्ढगं दु, कुंभाव-विणासगं वइर-खवगं च।
जुज्झम्मि जय-कारगं, सव्वणुऊलत्तकारगं च॥118॥

अर्थ–यंत्र सुख-शांति कारक, आरोग्यवर्द्धक, कलह निवारक, अर्थोत्पादन कारक, स्वपर उन्नति कारक, विद्यानिधि वर्द्धक, कुभाव विनाशक, बैर नाशक, युद्ध में जयकारक, सर्व अनुकूलता का कारक होता है।

31. मंत्र निर्माण कला

देहिग-देणिग-भोदिग-आइ-बाहं णिवारिदु-मक्खरेहि।
ताण सहावं जाणिय, मंतणिम्माणणं कला सा॥119॥

अर्थ–देहिक, दैनिक व भौतिक आदि बाधाओं के निवारण के लिए अक्षरों का स्वभाव जानकर उनके द्वारा मंत्र निर्माण करना वह मंत्र निर्माण कला है।

काए अवि भासाए, को वि अक्खरो अमंतरूवो णो।
समत्थो मंतरूवे, पत्तेयक्खर-मुवजुंजिदुं॥120॥
जो सो दु मंतकुसलो, कुव्वेदि चिय सगवर-कल्लाणाय।
दुरुवजोगं च किच्चा, दुग्गदि-पत्तं होज्ज पुरिसो॥121॥

अर्थ—किसी भी भाषा का कोई भी अक्षर अमंत्ररूप नहीं होता। जो स्वपर कल्याण के लिए मंत्र रूप में प्रत्येक अक्षर का उपयोग करने में समर्थ है वह मंत्र कुशल है। उसका दुरुपयोग करके पुरुष दुर्गति का पात्र होता है।

होज्ज अक्खर-पाणीण, पइडी गुण-दोस-पहावा पुध पुध।
तस्साणुसारेणं दु, मंतं जुजेज्जा हिदत्थं च॥122॥

अर्थ—अक्षर व प्राणियों की प्रकृति, गुण, दोष व प्रभाव पृथक्-पृथक् होता है। उसके अनुसार हित के लिए मंत्र का समायोजन करना चाहिए।

णेव होदि लक्ख-कोडि-णराणं सत्ती य मंतसत्ती व।
तत्तो अप्पहिदत्थं, णवयारं जवेज्ज झाएज्ज॥123॥

अर्थ—लाखों, करोड़ों पुरुषों की शक्ति भी मंत्र की शक्ति के समान नहीं होती। इसलिए आत्महित के लिए णमोकार मंत्र जपना चाहिए व ध्याना चाहिए।

इमो महामंतो चिय, जणगो चउसीदि-लक्ख-मंताणं।
सद्धाभत्तिविहीए, जवदि वंछिद-फलं पावेदि॥124॥

अर्थ–यह महामंत्र चौरासी लाख मंत्रों का जनक है। जो इसे श्रद्धा भक्ति व विधिपूर्वक जपता है वह वांछित फल प्राप्त करता है।

32. वस्त्र निर्माण कला

णिम्माणणं देहाइ-रक्खिदुं देहपरिमाणवसणाण।
धारणं च णादव्वा, णरस्स वत्थणिम्माणकला॥125॥

अर्थ–देहादि की रक्षा के लिए शरीर के नापानुसार वस्त्रों का निर्माण करना व धारण करना पुरुष की वस्त्र निर्माण कला जाननी चाहिए।

वत्थाइं बहुविहाणि, विहिण्णदेसेसुं भिण्णभिण्णाणि।
सदेसणुऊलमण्णं, वा णिम्माणिदुं पवीणो वि॥126॥

अर्थ–विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न बहुत प्रकार के वस्त्र होते हैं। अपने देश के अनुकूल वा अन्य वस्त्रों के निर्माण में कलावान् प्रवीण होता है।

33. आभूषण निर्माण कला

रयणसुवण्णादीणं, भूसणाणं णिम्माणे धारणे य।
जो कुसलो सो णेयो, भूसण-णिम्माण-कला-जुदो॥127॥

अर्थ–जो रत्न, स्वर्णादि के आभूषणों के निर्माण व धारण करने में कुशल है वह आभूषण निर्माण कला से युक्त जानना चाहिए।

34. चर्म लक्षण कला

लुक्खत्तं णिग्घत्तं, पस्सिय तिल-मसअ-पहुदिं देहस्स।
चम्म-लक्खण-कला चिय, भग्ग-विआणणं माणुसस्स॥128॥

अर्थ–शरीर की रूक्षता, स्निग्धता तिल, मस्से आदि को देखकर मनुष्य का भाग्य जानना नर की चर्म लक्षण कला जाननी चाहिए।

भूसणाइं धरंते, णरो य णारी विसेसरूवेणं।
धादु-रयणादीहि वा, पुप्फपत्तेहि वि णिम्मिदाणि॥129॥
णिम्माणेदुं कुसलो, जो सो आभूसणकलाजुत्तो दु।
देससमिद्धि-वड्ढगा, इमा कला चित्तरंजगा वि॥130॥

अर्थ–पुरुष व विशेष रूप से नारियाँ धातु, रत्न, पुष्प-पत्रादि के द्वारा निर्मित आभूषण धारण करते हैं। जो उन आभूषणों को बनाने में कुशल है वह आभूषण निर्माण कला से युक्त है। यह कला देश की समृद्धि वर्द्धक व चित्त रंजक है।

देहसुंदरिमाए दु, वत्थभूसणं धरंति णर-णारी।
रक्खणाए वत्ताइ, सग-सग-पइडि-अणुसारेणं॥131॥

अर्थ—नर-नारी देह सौंदर्य, देह रक्षा व आरोग्य के लिए अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार वस्त्राभूषण धारण करते हैं।

35. अभिनय कला

राया-राणि-पुरोहा-मंति-पुत्तादीण अभिणीणे जो।
पवीणो सो दु दुल्लह-अहिणय-कुला-जुदो लोयम्मि॥132॥

अर्थ—जो राजा, रानी, पुरोहित, मंत्री, पुत्रादि के अभिनय करने में प्रवीण है वह लोक में दुर्लभ अभिनय कला से युक्त है।

सोहणाय वट्टमाण-ठिदीइ रक्खिदुं पुरासक्किदिं च।
विहिण्णपत्तं होच्चा, णाडयकरणं च सुसिक्खाय॥133॥
णाडयकला अणुवमा, जेणं णिम्माणसत्ती वड्ढेदि।
पडिहा वियारसत्ती, हरिसो सगदेससमिद्धी वि॥134॥

अर्थ—प्राचीन संस्कृति की रक्षा के लिए, वर्तमान स्थिति के शोधन के लिए, सुशिक्षा के लिए विभिन्न पात्र बनकर नाटक करना अनुपम नाट्यकला जाननी चाहिए। जिससे निर्माणशक्ति, प्रतिभा, विचारशक्ति, हर्ष, स्वदेश समृद्धि भी संवर्द्धित होती है।

36. आजिकला

दिट्ठि-मुट्ठि-बाहु-दंड-जलाइ-जुद्धाण देदि णाणं जा।
आइकला सा णेया, होदि सरज्जाइ-रक्खणाय॥135॥

अर्थ—जो दृष्टि, मुष्टि, बाहु, दंड, जल आदि युद्धों का ज्ञान देती है वह आजिकला जाननी चाहिए। वह स्व राज्य आदि की रक्षा के लिए होती है।

असि-लट्ठ-गदा-तोमर, भिंडिमालाइ-अत्थसत्थेहिं च।
भेयादो दिट्ठि-मुट्ठि-मल्ल-दंद-जुज्झादीणं दु॥136॥
जुज्झमणेयपयारं, जल-थल-गगणे तह होज्ज वि जो सो।
रक्खाय सत्तूदो दु, कलाजुदो जुज्झिदुं कुसलो॥137।

अर्थ—तलवार, लट्ठ, गदा, तोमर, भिंदिपालादि अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध, दृष्टि, मुष्टि, मल्ल, द्वंद युद्धादि के भेद से युद्ध अनेक प्रकार का है। जल, स्थल, आकाश में भी युद्ध होता है। जो रक्षा के लिए शत्रु से युद्ध करने में कुशल है वह आजिकला से युक्त है।

37. शकुनापशकुन कला

सुहासुहं णादुं जो, सक्को पस्सिय पच्चक्ख-णिमित्तं।
पइडि-णर-तिरियाइं दु, सगुणावसगुणे-कुसलो सो॥138॥

अर्थ—जो प्रकृति, नर, तिर्यंचादि प्रत्यक्ष निमित्तों को देखकर शुभाशुभ जानने में कुशल है वह शकुनापशकुन कला में कुशल जानना चाहिए।

जिणदेवो णिग्गंथो-गुरू हस्सिद-रायो णीरकुंभो।
सज्जिद-हय-गय-कण्णा, सत्थिगायंसादी सगुणा॥139॥

अर्थ—जिनदेव, निर्ग्रंथ गुरु, हर्षित राजा, जल कुंभ, सुसज्जित अश्व, सुसज्जित हाथी, सुसज्जित कन्या, स्वस्तिक, दर्पणादि शकुन हैं।

बिलाव-कुक्कर-रुदणं, वत्थरहिद-धोअगो रित्तकुंभो।
परिपुण्ण-कुंभारो य, जाण असुह-णिमित्तं लोए॥140॥

अर्थ—रोती बिल्ली, रोता कुत्ता, वस्त्र से रहित धोबी, खाली घड़ा, भरा हुआ कुम्हार आदि लोक में अशुभ निमित्त जानने चाहिए।

38. रहस्यगत कला

णाणाविह-जंत-मंत-तंत-कीरेदुं दु कुसलो जो सो।
रहस्सगदकलाए दु, णिउणो सव्वमंगलसुहाय॥141॥

अर्थ—जो सर्व मंगल व सुख के लिए नाना प्रकार के यंत्र, मंत्र, तंत्र करने में कुशल है वह रहस्यगत कला में निपुण जानना चाहिए।

धण-रयण-णिहि-संपत्ति-संबंधिद-णाणं हवेदि हु जस्स।
अणेगविह-मंत-तंत-किरियाइं चिय चित्तभावं॥142॥
सुहदुहं भिण्णवत्थं, जाणिदुं परकिद-इंदजालाइं।
रहस्सं तह समत्थो, जो सो रहस्सगद-पवीणो॥143॥

अर्थ—जिसके धन, रत्न, निधि, संपत्ति संबंधित ज्ञान होता है, जो अनेक प्रकार के मंत्र, तंत्र, क्रियादि, चित्त के भाव, सुख-दु:ख भिन्न अवस्था, परकृत इंद्रजाल तथा रहस्य आदि को जानने में समर्थ है वह रहस्यगत कला में प्रवीण है।

39. कविता कला

बहु-अलंकार-रसजुद-कव्वरयणाइ सद्द-णिबंधणम्मि।
कुसलो जो सो णेयो, कवित्त-कलाए चिय णादू॥144॥

अर्थ—जो नाना अलंकार व रस से युक्त काव्य की रचना में, शब्दों के निबंधन में कुशल है वह कविता कला का ज्ञाता जानना चाहिए।

सिंगार-वीर-करुणा-हस्सब्भुद-भयंकर-रोद्दा तहा।
वीभच्छ-संत-रसावि, कव्वे उवादेया बुहेहि॥145॥
सुह-णंद-धम्म-साहस-उच्छाह-ओज-विरागादीणं।
वड्ढगा हवेंति रसा, कुभाव-विघादगा वि णियमा॥146॥

अर्थ–श्रृंगार, वीर, करुण, हास्य, अद्‌भुत, भयंकर, रौद्र, वीभत्स व शांत रस काव्य में बुधजनों के द्वारा उपादेय हैं। रस नियम से सुख, आनंद, धर्म, साहस, उत्साह, ओज व विराग आदि के वर्द्धक और कुभाव के विघातक होते हैं।

सुकव्वकलाइ कुसलो, भावपरिवट्टणम्मि समत्थो खलु।
गुरुव्व णिद्देसगो वि, समायसेवगो हिदेसी य॥147॥

अर्थ–अच्छी काव्य कला में कुशल पुरुष गुरु के समान निर्देशक, समाजसेवक, हितैषी और भाव परिवर्तित करने में समर्थ होता है।

40. छंद विचार कला

गूढ-गूढत्थ-संजुद-अणेग-छंद-जाणणे रयणाए।
जो पुरिस-पवीणो सो, छंदवियारकलाणादू दु॥148॥

अर्थ–जो पुरुष गूढ़ और गूढ़ार्थ से संयुक्त अनेक छंदों के जानने व रचना में प्रवीण है वह छंद विचार कला का ज्ञाता जानना चाहिए।

मत्तिगो सद्दिगो तह, उहयो छंदो तिण्णिविहो जाणह।
ए-बे-ते-अक्खरी य, विणा मत्तं होज्ज छंदो वि॥149॥

अर्थ—मात्रिक, शाब्दिक तथा उभय-इस प्रकार छंद तीन प्रकार का जानना चाहिए। एकाक्षरी, द्विअक्षरी, तीन अक्षरी या बिना मात्रा के छंद भी होते हैं।

अणुट्टुभं सिहरिणी य, हरिणो चउबोलं मंदक्कंता।
सद्दूलविक्कीडिदं, वसंततिलगा सोरट्ठं च॥150॥
मालिणी इंदवज्जा, उविंदवज्जा णराअ-मुवजादी।
गीदिगा हरिगीदिगा, सुंदरी अडिल्ला संभू य॥151॥
इच्चादि-बहु-छंदं दु, जो पुरिसो सक्को णादुं रयिदुं।
होज्जा पसंसणीओ, सो सव्वदा विदु-समायम्मि॥152॥

अर्थ—अनुष्टुप, शिखरिणी, हरिण, चउबोला, मंदाक्रांता, शार्दूलविक्रीड़ित, बसंततिलका, सोरठा, मालिनी, इंद्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, नाराच, उपजाति, गीतिका, हरिगीतिका, सुंदरी, अडिल्ल और शंभु इत्यादि बहुत से छंदों को जो पुरुष जानने व रचना करने में कुशल है वह विद्वत् समाज में सर्वदा प्रशंसनीय होता है।

41. रस परीक्षा कला

ओसहि-भोयणादीण, खज्जपदत्थाण भिण्ण-भिण्ण-रसं।
णादुं जो सक्कदि सो, रस-परिक्खा-कला-णादू दु॥153॥

अर्थ—जो औषधि, भोजनादि खाद्य पदार्थों के भिन्न-भिन्न रसों को जानने में समर्थ होता है वह रस परीक्षा कला का ज्ञाता जानना चाहिए।

घाणिंदियेण जिंघिय, खज्ज-सज्ज-लेय-पेय-भोयणस्स।
सादं णादुं सक्को, रसपरिक्खण कला णिउणो दु॥154॥

अर्थ—घ्राणेंद्रिय से सूंघकर जो खाद्य, स्वाद्य, लेह्य व पेय भोजन के स्वाद को जानने में समर्थ है वह रसपरीक्षण कला में निपुण है।

रसगंधवण्णादीहि, खज्जपदत्थे पउत्तवत्थूइं।
ओसहि-आइ-सव्वं चिय, णादुं सक्कदि कलाकुसलो॥155॥

अर्थ—जो रस, गंध, वर्णादि के द्वारा खाद्य पदार्थ में प्रयुक्त वस्तुओं और औषधि आदि सभी को जानने में समर्थ होता है वह रस परीक्षण कला में कुशल है।

42. ज्योतिष कला

तियालिय-सुहासुह-फल-कहणे जोदिस-सत्थाणुसारेण।
पुरिसो जो सो कुसलो, तस्स दु जोदिसकला णेया॥156॥

अर्थ–जो पुरुष ज्योतिष शास्त्र के अनुसार त्रैकालिक शुभाशुभ फल के कहने में कुशल है वह उसकी ज्योतिष कला जाननी चाहिए।

पणविहा जोदिस-गहा, सूर-चंद-गह-णक्खत्त-तारा य।
वडिंसस्स पदिक्खणं, कुणंति अड्ढाइज्ज-दीवे॥157॥

अर्थ–ज्योतिष ग्रह पाँच प्रकार के होते हैं–सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा। वे ढाई द्वीप में मेरु की प्रदक्षिण करते हैं अर्थात् सुमेरू पर्वत के चारों ओर–प्रदक्षिण क्रम में गतिमान रहते हैं।

पत्तेयं जादगम्मि, पुण्णपावाणुसारेण चिय तस्स।
ताण गिहाण पहावो, सो मुणिज्जदि जोदिसविदूहि॥158॥

अर्थ–प्रत्येक जातक पर उसके पुण्य-पाप के अनुसार उन ग्रहों का प्रभाव होता है। वह ज्योतिषविदों के द्वारा जाना जाता है।

उच्च-णीय-सत्तु-मित्त-सम-सग्गही आदी हवेंति गहा।
ठिदि-आइ-अणुसारेण, ताण फलं विआणदि णादू॥159॥

अर्थ—ग्रह उच्च, नीच, शत्रु, मित्र, सम और स्वग्रही आदि होते हैं। उनकी स्थिति आदि के अनुसार ज्योतिष का ज्ञाता उनके फल को जानता है।

करादीसुं विज्जंत-तुला-मीण-सत्थिग-पउमादीहिं।
तिसूल-मंदिरादीहि, सुहासुहं फलं चिण्हेहिं॥160॥
जाणदि जो पुरिसो सो, मत्थगुवरि-रेहाहि अहवा।
सरीर-लक्खणेहिं च, पवीणो हु जोदिसकलाए॥161॥

अर्थ—जो पुरुष हाथ आदि पर विद्यमान तुला, मछली, स्वास्तिक, कमल, त्रिशूल, मंदिर आदि चिह्नों के द्वारा, मस्तकोपरि रेखाओं अथवा शरीर के लक्षणों के द्वारा शुभाशुभ फल को जानता है वह ज्योतिष कला में प्रवीण है।

43. वैद्यक कला

रोय-सोग-दुह-खयिदुं, मूल-पुप्फ-फल-तयाइं रुक्खाण।
जाणदि ओसहि-रूवा, जा सा वेज्जग-कला णराण॥162॥

अर्थ—जो रोग, शोक, दुःखादि के क्षय के लिए वृक्ष की जड़, पुष्प, फल, त्वचा आदि को औषधि रूप जानता है वह मनुष्यों की वैद्यक कला जाननी चाहिए।

जदि बाल-किसोर-जुवा-पोढ-वुड्ढा बाला त्थी वुड्ढी।
होज्ज रोयी तदो पुध-पुध-विहीए सव्वुवयारो॥163॥

अर्थ–यदि बालक, किशोर, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, बालिका, स्त्री या वृद्धा रोगी होती है तो पृथक्-पृथक् विधि से सबका उपचार होता है।

जलमिदिगापवणेहिं, अग्गि-बहुवण्ण-चंदक्किरणेहिं।
रुक्खाणं मूल-पत्त-तया-फल-पुप्फादीहिं तह॥164॥
धादु-पासाण-रयण-भस्स-मणि-मोत्तिअ-सुक्कफलादीहि।
बहुविहखज्जत्थेहिं, फलिह-गंधगाइ-दव्वेहिं॥165॥
जवाणिआ-जाइपत्ति-जाइफलेला-पिप्पलि-हिंगेहिं।
गुडत्तअ-लवंग-जीरअ-हलद्दाइ-वेसवारेहिं॥166॥
अब्भंग-संगीदेहि, अद्दसुक्कपडेहि विहिण्णरसेहि।
उवयारो कुव्वेज्जदि, वायाम-पाणायामेहि वि॥167॥

अर्थ–पानी, मिट्टी, पवन, अग्नि, बहुत रंग, चंद्रकिरण, सूर्य किरण, वृक्षों की जड़, पत्ते, त्वचा, फल, पुष्पादि, धातु, पाषाण, रत्न, भस्म, मणि, मोती, शुष्क फल (dry fruits) बहुत प्रकार के खाद्यपदार्थ (शाक-फलादि) फिटकरी, गंधकादि द्रव्य, अजवायन, जावित्री, जायफल, इलायची, पीपल, हींग, दालचीनी, लौंग, जीरा, हल्दी आदि मसाले, तेल मर्दन, संगीत, गीले व शुष्क कपड़े, विभिन्न रस, व्यायाम और प्राणायाम इत्यादि के द्वारा भी उपचार किया जाता है।

जो इमेसु सव्वेसुं, कुसलो सो दु वेज्जगकलाजुत्तो।
सिलाहणीयो जणाण, विदियदेवोव्व दु मुणिज्जेदि॥168॥

अर्थ–जो इन सभी में कुशल है वह वैद्यक कला से युक्त पुरुष श्लाघनीय है। वह लोगों के लिए दूसरे भगवान के समान माना जाता है।

सव्वसेट्ठोसही चिय, अभक्खचागो य सुद्धपरिणामो।
पहुभत्ती गुरुसेवा, जवादी दु पुण्णकज्जाइं॥169॥

अर्थ–अभक्ष्यत्याग, शुद्ध परिणाम, प्रभुभक्ति, गुरुसेवा और जाप आदि पुण्यकार्य ही सर्वश्रेष्ठ औषधि हैं।

44. योग कला

मणवयणतणजोगाण, णिरुंभणे जो पुरिसो सक्को सो।
जोगकलासंजुत्तो, जोगी कहं णो जगपुज्जो॥170॥

अर्थ–जो पुरुष मन, वचन, काय योगों के निरोध में समर्थ है वह योग कला से संयुक्त योगी जगपूज्य क्यों नहीं होता? अर्थात् जगत्पूज्य होता है।

भारदीय-सक्किदीइ, णियामग-कारणं सत्थलाहस्स।
धम्माइ-कारणं अवि, अट्ठंजोगं करेज्ज सया॥171॥

अर्थ–भारतीय संस्कृति में स्वास्थ्य लाभ का नियामक कारण और धर्म आदि का भी कारण अष्टांग योग सदा करना चाहिए।

जम-णियमासण-पाणायाम-पच्चाहार-धारणा तहा।
झाणं समाही अट्ठ-विहो जोगो संविदिदव्वो॥172॥

अर्थ—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि इस प्रकार योग आठ प्रकार के जानने चाहिए।

अट्ठविहजोगम्मि जो, कुसलो सो णियमा जोगकलाए।
संजुत्तो य समत्थो, सगवरकल्लाणं करिदुं वि॥173॥

अर्थ—जो आठ प्रकार के योग में कुशल है वह नियम से योग कला से संयुक्त है। वह स्वकल्याण व परकल्याण करने में भी समर्थ है।

45. शिल्प कला

अणेगविह-चित्ताकिदि-मुक्किरिदुं धादु-पासाणादीसु।
णिउणो सिप्पकलाए, संजुदो उक्कित्तण-जोग्गो॥174॥

अर्थ—जो धातु, पाषाणादि में चित्र, आकृति आदि के उत्कीर्ण करने में निपुण है वह शिल्प कला से संयुक्त पुरुष प्रशंसा के योग्य है।

बहुविहा सिप्पकला दु, सराय-वीयरायाइ-मुत्तीओ।
भवण-पासाद-तोरण-मुक्खदार-कित्तिथंभादी॥175॥
पसु-पक्खि-देव-णराइ-पाणीणं तह विहिण्णाकिदीओ।
णिम्माणिदुं धादूसु, भित्ति-पासाणखंडादीसु॥176॥
समत्थो उक्किरेदुं, जो पुरिसो खलु सिप्पकलाए सो।
संजुत्तो सोक्ख-संति-समिद्धीण कारणं वि तहा॥177॥

अर्थ–शिल्पकला बहुत प्रकार की है। जो पुरुष सराग-वीतराग मूर्तियों भवन, प्रासाद, तोरण, मुख्यद्वार, कीर्त्तिस्तंभ आदि, पशु-पक्षी-देव- मनुष्यादि प्राणियों की विभिन्न आकृतियों के निर्माण में अथवा धातु दीवार, पाषाणखंडादि पर जो उत्कीर्ण करने में समर्थ है वह शिल्पकला से संयुक्त है। तथा यह कला सौख्य, शांति, समृद्धि का कारण भी है।

46. इंद्रजाल कला

भम-उप्पाडणम्मि जो, अण्णजणेसु समत्थो सो णेयो।
विरलो णरो णादि तं, णिउणो इंदजालकलाए॥178॥

अर्थ–जो अन्य जनों में भ्रम उत्पन्न करने में समर्थ है वह इंद्रजाल कला में निपुण जानना चाहिए। विरला व्यक्ति ही उसको जानता है।

दिट्ठिभम-उप्पाडणे, जहत्थरूव-गोवणे चिय जो सो।
सक्को विम्हयकारण-इंदजालियकलाजुत्तो य॥179॥

अर्थ—जो दृष्टि भ्रम उत्पन्न करने में, यथार्थ रूप को छिपाने में समर्थ है वह विस्मयकारक इंद्रजालियकला से युक्त है।

सयेज्ज सामि-णिवादिं, सुट्ठुविहीए णिरामयचित्तेण।
जेणं देसादीणं, हिदं कुव्विदुं ते सक्केज्ज॥180॥

अर्थ—श्रेष्ठ विधि से स्वामी, राजा आदि की सेवा करनी चाहिए। जिससे वे देशादि का हित करने में समर्थ हो सकें।

47. राज्यसेवा कला

रट्ठ-रज्ज-णिवादीण, सयेदुं पवीणो जो पुरिसो सो।
रज्जसेवाकलाए, जाणगो णिस्सत्थ-भावेण॥181॥

अर्थ—जो पुरुष निःस्वार्थ भाव से राष्ट्र, राज्य, राजा आदि की सेवा करने में प्रवीण है वह राज्यसेवाकला का ज्ञाता जानना चाहिए।

णिट्ठावाणुच्छाही, कत्तव्वसीलो जो देसं पडि दु।
सो रायकम्मी राय-सेवगो समिद्धि-कारगो य॥182॥

अर्थ—जो देश के प्रति निष्ठावान्, उत्साही व कर्तव्यशील होता है वह राजकर्मी राजा का सेवक और समृद्धिकारक होता है।

रायकम्मी जावइय-जागरिअ-णिरालस-सच्चसीला य।
तावइय-विअसिदो चिय देसो होज्ज अहोरत्तीइ॥183॥

अर्थ—राजकर्मी जितना जागरूक, निरालसी व सत्यशील होता है देश दिन-रात उतना ही विकसित होता है।

48. दृष्ट परीक्षा कला

णयणेहि पस्सिदूणं, गुणदोसाण जाणणं वत्थूणं।
दिट्ठ-परिक्खा-कला दु, मुणेदव्वा सण्णाणीहिं॥184॥

अर्थ—आँखों से देखकर वस्तुओं के गुण दोषों को जानना सम्यग्ज्ञानियों के द्वारा दृष्ट-परीक्षा कला जाननी चाहिए।

49. नीत कला

सवर-हिद-साहगा जा, णायणीदीसु णिउण-कारगा सा।
मंगल्ला णीदकला, णिव-पया-सव्वाण णेया दु॥185॥

अर्थ—स्वपर हित की साधिका, न्याय-नीति में निपुण करने वाली, राजा, प्रजा सभी के लिए मंगलकारी नीत कला जाननी चाहिए।

णीदि-णिम्माणिदुं सुह-संति-कारणेण कुसलो मंती व।
दव्वाइ-अणुसारेण, हिदत्थं णीदकलाजुत्तो॥186॥

अर्थ—जो सुख-शांति के कारण द्रव्यादि के अनुसार सर्व हितार्थ नीति निर्माण में मंत्री के समान कुशल है वह नीतकला से युक्त है।

50. विलेपन कला

सुगंधिद-मलय-केसर-हरिद्दादीहिं लेव-कुव्वणं च।
उत्तम-विलेवणकला, देहसुंदरिम-सुवड्ढगा दु॥187॥

अर्थ—सुगंधित चंदन, केसर व हल्दी आदि के द्वारा लेप करना, देह की सौंदर्य की वर्द्धक उत्तम विलेपन कला जाननी चाहिए।

51. व्यूह-प्रतिव्यूह-कला

अक्कमिदुं जो किच्चा, विहत्तं वाहिणी दु विसेसेणं।
मगर-पडिवूहादीण, वा चक्कवूह-रयणाए य॥188॥
कुसलो सो णादव्वो, वूह-पडिवूह-कलाइ संजुत्तो।
णरस्स अणुवमा कला, सा लोयम्मि पसंसणीया॥189॥

अर्थ—जो आक्रमण के लिए विशेष रूप से सेना विभक्त करके मकरव्यूह, प्रतिव्यूह आदि अथवा चक्रव्यूह की रचना में कुशल है वह व्यूह-प्रतिव्यूह-कला से संयुक्त जानना चाहिए। वह लोक में प्रशंसनीय मनुष्य की अनुपम कला है।

52. शस्त्र लक्षण कला

उत्तम-मज्झम-जहण्ण-धणु-असि-कुंताइ-अत्थ-सत्थाणं।
परिक्खणे जो कुसलो, सो सत्थ-लक्खण-कला-जुदो॥190॥

अर्थ—जो उत्तम, मध्यम, जघन्य धनुष, तलवार, भाला आदि अस्त्र-शस्त्रों के परीक्षण में कुशल है वह शस्त्र लक्षण कला से युक्त जानना चाहिए।

53. आयुध ग्रहण संचालन कला

कुंत-सल्ल-भिंडिमाल-करवाल-धणु-परसु-णालीआणं।
इच्चाइ-आउहाणं, गहणम्मि संचालणम्मि वा॥191॥
जो कुसलो सो णेयो, आउह-गहण-संचालण-कलाए।
जुदो सव्व-रक्खेदुं, णेव कया वि परपीडणाय॥192॥

अर्थ—जो कदापि भी दूसरों को पीड़ा देने के लिए नहीं अपितु सभी की रक्षा के लिए भाला, बर्छी, भिन्दिपाल, तलवार, धनुष, परशु, बंदूक आदि शस्त्रों के ग्रहण करने व चलाने में कुशल है वह आयुध ग्रहण संचालन कला से युक्त जानना चाहिए।

लोयम्मि विज्जंत-बहु-जोद्धा चालंति अत्थसत्थाइं।
तहवि विसेस-पुरिसा हु, होंति अत्थ-सत्थ-चालगा य॥193॥

अर्थ—लोक में विद्यमान बहुत से योद्धा अस्त्र-शस्त्र चलाते हैं। तथापि विशेष पुरुष ही अस्त्र-शस्त्र संचालक होते हैं।

होज्जा अहिसाव-अत्थ-सत्थाणि इमाइ कलाइ हीणस्स।
कलाजुदो जो रक्खदि, सव्वं तस्स दु वरदाणोव्व॥194॥

अर्थ—इस कला से हीन के लिए अस्त्र-शस्त्र अभिशाप हैं। जो कला से युक्त सबकी रक्षा करता है उसके लिए वे वरदान के समान हैं।

54. छेद्य कला

पत्तफलसागादीण, सोहणे छेदणे कुसलो जो सो।
छेदकलाए णिउणो, धम्महेउ-वत्तविड्ढीए॥195॥

अर्थ–धर्म के हेतु व स्वास्थ्य की वृद्धि के लिए जो पत्र, फल, शाक आदि के शोधन व छेदन में कुशल है वह नर छेद्य कला में निपुण है।

55. वनोत्पत्ति कला

बहुविह-वणप्फदीणं, फल-पुप्फाइ-जुद-रुक्खाण ववणे।
आरोवणे य कुसलो, वणुप्पत्तिकला-जुत्तो सो॥196॥

अर्थ–जो बहुत प्रकार की वनस्पतियों, फल-पुष्पादि से युक्त वृक्षों के वपन और आरोपण में कुशल है वह वनोत्पत्ति कला से युक्त है।

56. पशु वशीकरण कला

सीहगयस्सुसह-साण-भल्लूग-सप्पादी य पसू जो सो।
जंतेदुं कुसलो पसु-वसीकरण-कला-संजुत्तो॥197॥

अर्थ–जो शेर, हाथी, अश्व, बैल, श्वान, भालू, सर्प आदि पशुओं को वश में करने में कुशल है वह पशु वशीकरण कला से संयुक्त है।

इट्ठभोयणेण मिट्ठ-वयणेणं पहारेणं अहवा दु।
ताण पइडिं विजाणिय, पसुं-जंतिदुं सक्केदि सो॥198॥

अर्थ—इष्ट भोजन, मिष्ट वचन अथवा प्रहारादि से पशुओं को उनकी प्रकृति जानकर वश करने में वह कला विज्ञानी समर्थ होता है।

57. प्रतिचार कला

सिसु-बाल-जुव-वुड्ढाण, रोइ-पीडिद-मुच्छिदाणं वा जो।
सेवुवयारे णिउणो, सुह-पडियारकलाजुदो सो॥199॥

अर्थ—जो शिशु, बालक, युवा, वृद्ध, रोगी, पीड़ित, मूर्च्छितों की सेवा व उपचार में निपुण है वह शुभ प्रतिचार कला से युक्त है।

विरलो जणो हि सेवा-पडियार-वेज्जावच्चादीसुं च।
होदि कुसलो वच्छल्ल-खमाजुदो दुगुंछ-विजेदू॥200॥

अर्थ—वात्सल्य व क्षमा से युक्त, ग्लानि पर विजय प्राप्त करने वाला विरला व्यक्ति ही सेवा, प्रतिचार व वैय्यावृत्ति आदि में कुशल होता है।

58. पशु लक्षण कला

लक्खणेहि परिक्खणे, गामिल्लवण्णजंदूणं वा जो।
कुसलो सो णादव्वो, पसुलक्खणकलासंजुत्तो॥201॥

अर्थ—जो ग्रामीण वा वन्य जन्तुओं के लक्षणों के द्वारा परीक्षण में कुशल है वह पशु लक्षण कला से संयुक्त जानना चाहिए।

59. राजचिह्न कला

छत्त-सीहासण-चमर-दंडादीण जो परिक्खणं कडुअ।
जाणदि सो राय-चिण्ण-लक्खण-कला-जुत्तो णेयो॥202॥

अर्थ—जो, छत्र, सिंहासन, चँवर, दंड आदि का परीक्षण करके जानता है वह पुरुष राजचिह्नकला से युक्त जानना चाहिए।

60. सौभाग्यकर कला

जीवणस्स जो णादुं, सोक्ख-सोहग्ग पुण्ण-भावि-खणा दु।
सक्को सो णादव्वो, सोहग्गकरकलासंजुदो॥203॥

अर्थ—जो जीवन के सुख व सौभाग्यपूर्ण भावी क्षणों को जानने में समर्थ है वह सौभाग्यकरकला से युक्त जानना चाहिए।

61. दौर्भाग्यकर कला

जीवणस्स जो णादुं, दुक्ख-दोहग्गपुण्ण-भाविखणा दु।
रक्खणुवाअं सक्कदि दोहग्गकरकलासंजुदो॥204॥

अर्थ—जो जीवन के दुःख दौर्भाग्यपूर्ण भावी क्षणों को व उनसे रक्षण के उपायों को जानने में समर्थ होता है वह दौर्भाग्यकरकला से युक्त जानना चाहिए।

62. ग्रह संचार कला

जाणदि गदि-विहव-गहण-कुडुंबादिं चंदाइ-गहाणं च।
सुहासुहं फलं वि जो, सो गहसंचारकलाजुदो॥205॥

अर्थ—जो चंद्रादि ग्रहों के गति, वैभव, ग्रहण, परिवार व शुभाशुभ फल को भी जानता है वह ग्रह संचार कला से युक्त जानना चाहिए।

63. पठन कला

अणेगभासाउ पढिय, ताणत्थं वि णादुं समत्थो जो।
पढणकलाइ पवीणो, सो पुण्णवंतणरो णेयो॥206॥

अर्थ—जो अनेक भाषाओं को पढ़कर उनके अर्थ को भी जानने में समर्थ है वह पुण्यवान् नर पठन कला में प्रवीण जानना चाहिए।

64. सफलकरण कला

फलहीणं रुक्खं जो, फलजुत्तं कुणिदुं दु समत्थो सो।
विज्जापुरिसट्ठेणं, सफलकरणकलासंजुत्तो॥207॥

अर्थ—जो विद्या या पुरुषार्थ के बल से फलहीन वृक्ष को फलयुक्त करने में समर्थ है वह सफलकरण कला से युक्त जानना चाहिए।

65. अफलकरण कला

फलजुत्तं रुक्खं जो, फलहीणं कुणिदुं दु समत्थो सो।
विज्जापुरिसट्ठेणं, अफलकरणकलासंजुत्तो॥208॥

अर्थ—जो विद्या या पुरुषार्थ के बल से फलयुक्त वृक्ष को फलहीन करने में समर्थ है वह अफलकरण कला से युक्त जानना चाहिए।

66. खेल कला

होंति पत्तेयदेसे, बहुकिड्डा खेत्ताइ-अणुसारेण।
तासुं जो णिउणो सो, खेलकलाइ जुत्तो पुरिसो॥209॥

अर्थ—प्रत्येक देश में क्षेत्रादि के अनुसार बहुत खेल होते हैं। उनमें जो निपुण है वह पुरुष खेल कला से युक्त जानना चाहिए।

67. पशु पालन कला

गो-महिसुट्ट-हयजाण, मेंढादि-पसूण सुगाइ-पक्खीण।
सगबालोव्व, पालेदि, विआणिदूणं पइडिं ताण॥210॥
अणुकंवा-वच्छलेण, रक्खदे सगपुत्तोव्व चिय जो सो।
पसुपालण-सुकलाए, पवीणो य संबुज्झिदव्वो॥211॥

अर्थ—गाय, भैंस, ऊँट, अश्व, गज, अज, मेंढा आदि पशु व शुकादि पक्षियों का पालन, उनकी प्रकृति जानकर जो अपने बालक के समान करता है। अनुकंपा व वात्सल्य से अपने पुत्र के समान उनकी रक्षा करता है वह पशुपालन कला में प्रवीन जानना चाहिए।

वच्छलभावेण विणा, पसुपालणं हवेदि असंभवो दु।
दयालु-सहिण्हू खमासीलो इमाइ कला-णिउणो॥212॥

अर्थ—वात्सल्य भाव के बिना पशुपालन असंभव होता है। दयालु, सहिष्णु व क्षमाशील इस कला में निपुण होता है।

पसुपक्खीण देदि जो, भोयणाइं इत्थं सगपुत्तोव्व।
पसू ते मित्तं व सग-सामिं रक्खंति णिट्ठाए।।213।।

अर्थ–इस प्रकार जो पशु-पक्षियों के लिए अपने पुत्र के समान भोजनादि देता है, वे पशु अपने स्वामी की मित्र के समान निष्ठा से रक्षा करते हैं।

68. धर्मकला

तासुं सव्वकलासुं, होदि सव्वत्थ विसिट्ठधम्मकला।
सव्वजणेहि सव्वदा, पसंसणीया वंदणीया।।214।।

अर्थ–उन सभी कलाओं में सर्वत्र धर्माष्ट होती है। सर्व जनों के द्वारा वह सर्वदा प्रशंसनीय व वंदनीकला विश्यि है।

धम्मो दयाविसुद्धो, अहिंसालक्खणो तस्स धम्मस्स।
उत्तमखमाइ-दहलक्खणा जाणिज्जंति तस्सेव।।215।।

अर्थ–दया से विशुद्ध धर्म है। उस धर्म का लक्षण अहिंसा है। उत्तम क्षमादि दस धर्म भी उस ही धर्म के लक्षण जाने जाते हैं।

वत्थुसहावं धम्मं, जो गहदे तस्स होदि उद्धारं।
धम्मकलाए विणा ण, को वि लहदे भव-सिव-सोक्खं।।216।।

अर्थ–वस्तु का स्वभाव धर्म है, जो उसे ग्रहण करता है उसका उद्धार होता है। धर्म कला के बिना कोई भी संसार व मोक्ष सुख को प्राप्त नहीं करता।

69. सजीव-निर्जीव कला

जीविदं च मिदोव्व जो, मिदं जीविदोव्व करिदुं सक्केदि।
सजीव-णिज्जीव-कला-संजुत्तो सो मुणेदव्वो।।217।।

अर्थ—जो जीवित व्यक्ति को मृत के समान और मृत को जीवित करने में समर्थ होता है वह पुरुष सजीव-निर्जीव कला से युक्त जानना चाहिए।

70. जलाकर्षण कला

भूमिं भिंदित्ता पुण, कूव-जलासयादीदो दु जलस्स।
उड्ढम्मि णीसारणं, जलाकस्सण-कला जाणेज्ज।।218।।

अर्थ—भूमि को भेदकर पुनः कूप, जलाशय आदि से जल का ऊपर की ओर निकालना जलाकर्षण कला जाननी चाहिए।

71. सौंदर्य प्रसाधन निर्माण कला

सरीर-सिंगारेदुं, बहुअ-लेव-सिंगार-सामग्गीण।
णिम्माणणं सुंदरिम-पसाहण-णिम्माण-सुकला दु।।219।।

अर्थ—शरीर के शृंगार के लिए बहुत से लेप, शृंगार सामग्री का निर्माण करना सौंदर्य प्रसाधन निर्माण नामक सुकला है।

72. लोकाचार कला

दव्व-खेत्त-याल-भाव-अणुसारेण ववहार-करिदुं जो।
पवीणो लोयायार-कला तस्स सुपसंसणीया।।220।।

अर्थ—जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार व्यवहार करने में प्रवीण है उसकी लोकाचार कला सुप्रशंसनीय है।

नारियों की चौंसठ कलाएँ

बहुगुण युक्त नारी कला

णारी-कला सव्वदा, रोयहारगा मणवयणदेहाण।
सक्किदि-वड्ढगा तहा, मणरंजण-हेदू सव्वाण॥221॥

अर्थ—नारी कला सर्वदा मन, वचन, देह के रोगों की हारक, संस्कृति का वर्द्धन करने वाली तथा सभी के लिए मनोरंजन का हेतु है।

1. संगीत कला

सडजुसहगंधारेसु, मज्झम-पंचम-धइवद-णिसादेसु।
सत्तसरेसु समवेद-संगीदकला मणं मोहदि॥222॥

अर्थ—षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद इन सात स्वरों में समवेत संगीत कला मन को मोहती है।

दुदाइतिलयसहिदं, अत्थ-चउरस-ताल-जोणि-धारगं।
कंठसिरुरठाणेहिं, अहिवत्तं संगीदं जाण॥223॥

अर्थ—द्रुतादि तीन लयों से सहित, अस्त्र, चतुरस्र इन ताल की दो योनियों का धारग व कंठ, सिर, उर स्थानों से अभिव्यक्त संगीत जानना चाहिए।

आरोहि-अवरोहीहि, ठायि-संचारीहि चउवण्णेहिं।
जुदादु चउपदट्ठिदं, सक्किदाइ-भासा-जुत्तं च॥224॥

अर्थ—आरोही, अवरोही, स्थायी और संचारी इन चार वर्णों से सहित होने से संगीत चार प्रकार के पद में स्थित व संस्कृत आदि भाषाओं से युक्त है।

धइवदि-आसही सडज-सडजा उदिच्चा णिसादिणी तहा।
सडजकेकसि-मज्झमा, गंधारी अट्ठजादिजुदं॥225॥

अर्थ—संगीत धैवती, आर्षभी, षड्ज-षड्जा, उदीच्या, निषादिनी, षड्जकैकशी षड्जमध्यमा तथा गांधारी इन आठ जातियों से युक्त है।

आरोहि-पदस्स एग-अलंकारं पसण्णादी णेयं।
अवरोहिपदस्स तहा, पसण्णंतो कुहरो दु दोण्णि॥226॥

अर्थ—आरोही पद का प्रसन्नादि नामक एक अलंकार तथा अवरोही पद के प्रसन्नांत तथा कुहर ये दो अलंकार जानने चाहिए।

पसण्णादि-पसण्णंत-मज्झपसाद-ठायिपदलंकारं।
पसण्णज्जवसाणो य, चदू सया संबुज्झिदव्वं॥227॥

अर्थ—प्रसन्नादि, प्रसन्नान्त, मध्य प्रसाद और प्रसन्नाद्यवसान ये चार स्थायी पद के अलंकार हैं।

णिव्वत्त-पट्ठिद-बिंदु-पेंहोलिद-तारमंद-पसण्णा य।
छहसंचारिपदस्स दु, अलंकारं संविदिदव्वं॥228॥

अर्थ—निर्वृत्त, प्रस्थित, बिंदु, प्रेंखोलित, तारमंद्र और प्रसन्न ये छह संचारी पद के अलंकार जानने चाहिए।

ईअ तेरहलंकार-संजुत्तं च उत्तमं संगीदं।
सव्वलक्खणेहि जुदा, पसंसणीय-संगीदकला॥229॥

अर्थ—इस प्रकार तेरह अलंकार से युक्त उत्तम संगीत है। सर्व लक्षणों से युक्त संगीत कला प्रशंसनीय है।

विस्से जस-कारगेण, चित्तरंजग-चिंताणासगेहिं।
संगीद-कला-जुत्ता, इत्थी कहं णो होदि मंगल्ला।।230।।

अर्थ–विश्व में यश कारक, चित्तरंजक, चिंतानाशक संगीत कला से युक्त स्त्री मंगल कैसे नहीं होती? अर्थात् होती है।

2. वाद्यकला

तंतीए उप्पण्णं, ततं मिदंगेणं तह अवणद्धं।
वंसि-सुसिर-तालेहिं, घणं चउविहं वज्जं तहा।।231।।

अर्थ–वीणा से उत्पन्न होने वाला तत, मृदंग से उत्पन्न होने वाला अवनद्ध, बांसुरी से उत्पन्न होने वाला शुषिर और ताल से उत्पन्न होने वाला घन, ये चार प्रकार के वाद्य हैं।

सव्व-वज्जाणि हवेंति, णाणाभेयसहिदाणि एदाइं।
सुरपुज्जा सा णारी, एरिसा हु सवज्जकला जा।।232।।

अर्थ–ये सभी वाद्य नाना भेदों से सहित होते हैं। जो इस तरह की वाद्य कला से युक्त है वह नारी सुरपूज्य है।

3. नृत्यकला

णच्चं तिविहं णेयं, अंगहारस्सय-महिणयस्सयं च।
वावामिगं णादि तं, जा सा त्थी लोयमंगल्ला।।233।।

अर्थ–अंगहाराश्रय, अभिनयाश्रय और व्यायामिक- ये तीन प्रकार के नृत्य जानने चाहिए। जो स्त्री इसे जानती है, नृत्य कला में कुशल वह स्त्री लोक में मंगलरूप है।

4. रसकला

अवंतरभेयेहि जुद-सिंगाराइ-णवविह-रसं जा सा।
जाणदि रसकलाजुदा, पुज्जणीया माणणीया य॥234॥

अर्थ—जो स्त्री अवांतर भेदों से सहित श्रृंगार आदि नौ प्रकार के रस को जानती है, रसकला से युक्त वह स्त्री पूज्यनीय और माननीय है।

5. लिपि कला

वट्टदे सगदेसम्मि, अणुवत्तं चिय लिपिणाणं जं तं।
कप्पंति विक्कंदं हु, ससंकेदणुसारेण जस्स॥235॥

अर्थ—जो लिपि अपने देश में चलती है वह अनुवृत्त कहलाती है। अपने-अपने संकेतानुसार लोग जिसकी कल्पना करते हैं वह विकृत है।

पच्चंगाइवण्णेसु, होदि जस्स पओगो तं जाणेज्ज।
सामइगं सव्वा जा, जाणंति लिवि-कला-जुदा सा॥236॥

अर्थ—प्रत्यंगादि वर्णों में जिसका प्रयोग होता है उसे सामयिक जानना चाहिए। जो इन सभी को जानती हैं वे नारी लिपि कला से युक्त हैं।

णइमित्तिगं दु णेयं, पुप्फाइ-पदत्था थक्कविदूणं।
वण्णट्ठाणेसुं अवि, अवंतरबहुभेया इमस्स॥237॥

अर्थ—वर्णों के स्थान पर पुष्पादि पदार्थ रखकर जो लिपि का ज्ञान किया जाता है वह नैमित्तिक जानना चाहिए। इसके अवांतर बहुत भेद भी हैं।

सुविसेसणाणकारग-अणुवत्त-विक्कदादीहिं सहिदा।
लिविकलाइ जुदणारी, गंधवाहिगा पउमवणं व॥238॥

अर्थ—समीचीन विशेष ज्ञान की कारक अनुवृत्त, विकृत आदि से सहित लिपिकला से युक्त नारी कमल वन के समान गंधवाहिका है।

6. उक्ति कौशल कला

ठाण-सर-सक्कारेहि, तह विण्णास-कागु-समुदायेहिं।
विराम-सामण्णभिहिद-समाणत्त थत्त-भासाहिं॥239॥
लेह-मादुगा-सहिदा, भासण-णेउणं लोयप्पसिद्धा।
दुल्लहा उत्ति-कोसल-कला णारीण मुणेदव्वा॥240॥

अर्थ—स्थान, स्वर, संस्कार, विन्यास, काकु, समुदाय, विराम, सामान्याभिहित, समानार्थत्व, भाषा, लेख व मातृका से सहित भाषण चातुर्य नारियों की लोकप्रसिद्ध दुर्लभ उक्ति कौशल कला जाननी चाहिए।

उरथल-कंठ-मुद्धाण भेयादु तिविहठाणं सडजादी।
सत्तसरा सक्कारो, दुविहो लक्खणुद्देसादो॥241॥

अर्थ—उरस्थल, कंठ और मूर्द्धा के भेद से स्थान तीन प्रकार का है। षड्ज आदि सात स्वर हैं। लक्षण व उद्देश के भेद से संस्कार दो प्रकार का है।

सुपदवक्क-महावक्क-पहुदि-जुद-कहणं विण्णासकला दु।
सावेक्ख-णिरवेक्खाण, भेयादु दुवियप्पो कागू॥242॥

अर्थ—श्रेष्ठ पदवाक्य, महावाक्य आदि से युक्त कथन करना विन्यास कला है। सापेक्ष और निरपेक्ष के भेद से काकु दो प्रकार का है।

गज्जं पज्जं चंपू, इत्थं तिण्णिवियप्पो समुदाओ।
विरामो मुणेदव्वो, उल्लेहणं संखेवेण॥243॥

अर्थ—गद्य, पद्य और चंपू-इस प्रकार तीन प्रकार का समुदाय है। किसी विषय का संक्षेप से उल्लेख करना विराम जानना चाहिए।

सामण्णाभिहिदो चिय, एगट्ठाण पओगणं णियमेण।
समाणत्थत्त-मेग-सद्देण बहुअत्थ-कहणं दु॥244॥

अर्थ—एकार्थक अर्थात् पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करना सामान्याभिहित है। एक शब्द से बहुत अर्थों का कहना समानार्थता है।

भासा तिविहा णेया, अज्ज-लक्खण-मिलिच्छाण भेयादु।
पज्जरूव-ववहारो, हवेदि जस्स चिय लेहो सो॥245॥

अर्थ—आर्य, लक्षण और म्लेच्छ के भेद से भाषा तीन प्रकार की जाननी चाहिए। जिसका पद्यरूप व्यवहार होता है वह लेख है।

ठाण-सरादी णेया, जादी तहा वत्तलोयवागो दु।
मग्गववहारो इमा, मादुगा चिय संविदिदव्वा॥246॥

अर्थ—स्थान, स्वरादि जाति जाननी चाहिए। व्यक्तवाक्, लोकवाक् और मार्गव्यवहार ये मातृका जाननी चाहिए।

जा सुह-णारी एरिस-उत्तिकोसल-कलाए जुत्ता सा।
पुप्फं व आगरिसगा, सिट्ठजणेसु सिलाहणीया॥247॥

अर्थ—जो शुभ नारी इस प्रकार की उक्ति कौशल कला से युक्त होती है वह पुष्प के समान आकर्षक व शिष्टजनों में श्लाघनीय है।

7. आस्वाद्य विज्ञान कला

सडरसजुत्तभोयणं, सव्वाण इट्ठरूवा होदि णियमा।
तस्स णिम्माण-कुसला, कलासज्ज-विण्णाण-सहिदा॥248॥

अर्थ–षट्रस युक्त भोजन नियम से सभी के लिए इष्ट रूप होता है। उसके निर्माण में कुशल नारी आस्वाद्य विज्ञान कला से युक्त है।

भक्ख-भोज्ज-पेय-लेह-चुस्सा पंचहो भोयणपदत्था।
सादस्स भुंजिज्जदे, किट्टिमाकिट्टिमं च भक्खं॥249॥

अर्थ–भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और चूष्य ये पाँच प्रकार के भोजन संबंधी पदार्थ हैं। स्वाद के लिए जो खाया जाता है वह भक्ष्य है। यह भक्ष्य कृत्रिम व अकृत्रिम दो प्रकार का है।

छुहाणिवित्तीए जं, भुंजिज्जदे भोज्जं बेविहं तं।
मुक्ख-साहगं भोज्जं, घयचोरि-रोडिआइ-पढमं॥250॥
दालि-सागादी जाण, विदियं साहग-भोज्जं णियमेणं।
पायण-छिंदण-सीदुण्हत्तकरणाइ-जुदा सुकला॥251॥

अर्थ–क्षुधा निवृत्ति के लिए जो खाया जाता है उसे भोज्य कहते हैं। वह भोज्य मुख्य और साधक के भेद से दो प्रकार का है। पराठे, रोटी आदि प्रथम अर्थात् मुख्य भोज्य है। दाल, शाकादि नियम से दूसरा साधक-भोज्य है। यह आस्वाद्य विज्ञान पाचन, छेदन, शीतत्वकरण, ऊष्णत्वकरण आदि से युक्त श्रेष्ठ कला है।

सव्वविह-भोयणस्स दु, णिम्माणम्मि णिउणा णारी सया।
इंदधणुं व कस्स णो, चित्तहारिगा हवदि जा सा॥252॥

अर्थ—सर्व प्रकार के भोजन के निर्माण में जो नारी सदा निपुण है वह इंद्रधनुष के समान किसके चित्तहारिका नहीं होती? अर्थात् अवश्य होती है।

मुहभावं पस्सित्ता, आयर-पुज्ज-वच्छलभावेणं च।
दाएज्ज अदणं ससुर-सस्सूणं पइ-पिआमहादीणं॥253॥

अर्थ—ससुर, सास, पति, दादा आदि को आदर, पूज्य व वात्सल्य भाव से उनके मुख का भाव देखकर भोजन कराना चाहिए।

मादुभावेण सहिदं, णिम्मिद-वट्टिद-भोयणं अमियं व।
अद्धंगिणिभावेणं, सहिदं च मेत्तं भोयणं व॥254॥

अर्थ—मातृभाव के साथ बनाया गया व परोसा गया भोजन अमृत के समान तथा अर्द्धांगिनी भाव के सहित बनाया व परोसा गया भोजन मात्र भोजन के ही समान है।

वंचगभावेण सहिद-णिम्मिद-वट्टिद-भोयणं भारोव्व।
रोय-वियडीण हेदू, तह मणोवियारस्स तं वि॥255॥

अर्थ—छल-कपट भाव से सहित निर्मित या परोसा गया भोजन भार के समान होता है। वह रोग, विकृति तथा मनोविकार का भी हेतु होता है।

ओसहीव सव्ववियडि-हारगं णिम्मिदं वट्टिदमदणं।
विणयेण सुहवयणेहि, पसण्णचित्तेणं जाणेज्ज।।256।।

अर्थ–विनयभाव, शुभवचनों व प्रसन्न चित्त से बनाया गया व परोसा गया भोजन औषधि के समान व सर्व विकृतियों का हारक जानना चाहिए।

8. पानक निर्माण कला

सत्तिवड्ढग-सीदुण्ह-पेय-खीर-सीदजोग-तक्काणं।
आइ-पेय-णिम्माणे, कुसला पाणगकलाजुत्ता।।257।।

अर्थ–जो नारी शक्तिवर्द्धक शीत व ऊष्ण पेय, क्षीर, शीतयोग (शर्बत), तक्र आदि पेय के निर्माण में कुशल है वह पानक निर्माण कला से युक्त है।

9. क्रीड़ा कला

चेट्ठा-उवयरण-वाणि-कलावासंग-भेयादो चदुहा।
किड्डा तासुं कुसला, किड्डाकलाजुत्ता णारी।।258।।

अर्थ–चेष्टा, उपकरण, वाणी और कलाव्यासंग के भेद से क्रीड़ा चार प्रकार की होती है। उन क्रीड़ाओं में कुशल नारी क्रीड़ा कला से युक्त कहलाती है।

सरीरूप्पण्ण-चेट्ठा, कंदुगाइ-खिल्लणं च उवयरणं।
जूअ-पहुदि-वासंगं, बहु-सुहासिद-कहणं वाणी।।259।

अर्थ–शरीर से उत्पन्न होने वाली क्रीड़ा चेष्टा है। गेंदादि खेलना उपकरण है। जूआ आदि खेलना कलाव्यासंग है। बहुत सुभाषित आदि कहना वाणी क्रीड़ा है।

10. गंधयोजन निर्माण कला

जोणिदव्वहिट्ठाणं रस-वीरिय-कप्पणा परिकम्मं च।
गुणदोसविण्णाणं च, कउसलं अंगं णादव्वं।।260।।
गंधजोयणकलाए, सुगंधिद-दव्व-णिम्माण-कहगाइ।
जा तस्सिं कुसला हु सा, गंधजोयणणिम्माणजुदा।।261।।

अर्थ–योनिद्रव्य, अधिष्ठान, रस, वीर्य, कल्पना, परिकर्म गुण-दोष विज्ञान और कौशल ये सुगंधित द्रव्य निर्माण के कहने वाली गंधयोजन कला के अंग जानने चाहिए। जो नारी उसमें कुशल है वह गंधयोजन निर्माण कला से युक्त है।

कुंकुम-कत्थूरिआण, पाडलजल-केअइजल-अगराणं।
तगर-कप्पूरादीण, सुगंधितपदत्थणिम्माणे।।262।।
पउत्तं जोणिदव्वं, धूवणवट्टि-पहुदीण-मस्सयं च।
अहिट्ठाणं जाणेज्ज, महुरादी रसो पंचविहो।।263।।
सुगंधिदे हु पउत्तो, अत्थाणं सीदत्तमुण्हत्तं च।
बेविहं वीरियं तह, जिणकहिदागमेण जाणेज्ज।।264।।

अर्थ–कुंकुम, कस्तूरी, गुलाबजल, केवड़ा जल, अगर, तगर, कर्पूरादि सुगंधित पदार्थ के निर्माण में प्रयुक्त द्रव्य योनिद्रव्य है। जो धूपबत्ती आदि का आश्रय है वह अधिष्ठान जानना चाहिए। सुगंधित द्रव्य में प्रयुक्त मधुर आदि पाँच प्रकार का रस है।

पदार्थों की जो शीतता व ऊष्णता है वह वीर्य जिनागम से दो प्रकार का जानना चाहिए।

अणुऊल-पडिऊलाण, पदत्थाणं मीसणं कप्पणा दु।
तिल्लादीण सोहणं, धुवणामादी परिकम्मं च॥265॥

अर्थ–अनुकूल-प्रतिकूल पदार्थों का मिलाना कल्पना है। तेलादि पदार्थों का शोधन करना और धोना आदि परिकर्म कहलाता है।

गुणदोसविण्णाणं दु, गुणदोसाण समिक्खणं जाणेज्ज।
विसिट्ठत्त-विजाणणं, सगवर-वत्थूण कउसलं॥266॥

अर्थ–गुण-दोषों का जानना गुणदोष विज्ञान जानना चाहिए। स्वपर वस्तुओं की विशिष्टता जानना कौशल है।

एदेसुं सव्वेसुं, कुसला णारी सया वंदणीया।
बहुविह-फल-पुप्फेहिं, गंधित णिम्माणणं सुकला॥267॥

अर्थ–बहुत प्रकार के फल-पुष्पादि से गंधित वस्तुओं का निर्माण करना श्रेष्ठ कला है। इन सभी में कुशल नारी सदा वंदनीय है।

11. चित्रकला

चित्तं दुविहं णेयं, भेयादो तहा सुक्क-अद्दाणं।
सुक्कं अवि दुवियप्पं, णाणासुक्क-वज्जिदाणं दु॥268॥

अर्थ–शुष्क व आर्द्र के भेद से चित्र दो प्रकार का जानना चाहिए। नाना शुष्क और वर्जित के भेद से शुष्क चित्र भी दो प्रकार का है।

अद्दचित्तं णिम्मिदं, चंदणाइ-विहिण्ण-दवत्थेहिं च।
अणेगविहं जाणेज्ज, चित्ताणंद-हेदू णियमा।।269।।

अर्थ–चंदनादि विभिन्न द्रव पदार्थों से निर्मित आर्द्र चित्र अनेक प्रकार का जानना चाहिए। वह नियम से चित्त के आनंद का हेतु है।

किट्टिमाकिट्टिमेहिं, बहुरंगेहि पुढवि-वत्थादीसुं।
चित्ताण होदि रयणा, आगरिसग-मणोहराणं दु।।270।।

अर्थ–कृत्रिमाकृत्रिम बहुत रंगों के द्वारा पृथ्वी, वस्त्रादि पर आकर्षक व मनोहर चित्रों की रचना होती है।

इत्थं चित्तकलं जा विजाणदे इत्थी गोरव्वा सा।
चित्तकलाजुत्ता सय, सगजादीसुं माणणीया।।271।।

अर्थ–इस प्रकार जो स्त्री चित्रकला जानती है वह गौरव के योग्य है। चित्रकला से युक्त स्त्री सदा अपनी जातियों में माननीय है।

12. कढ़ाई कला

विहिण्णविहवत्थेसुं, तंतु-संताण-जोग-करणं तहा।
सुट्ठु-विविह-वण्णाणं, कुलदीविगा-णारीण कला।।272।।

अर्थ–विभिन्न प्रकार के वस्त्रों पर श्रेष्ठ विविध वर्ण के धागों से कढ़ाई करना कुलदीपिका नारियों की कला है।

13. रंगना कला

विविहसेट्ठवण्णेहिं, वत्थाणं रंजणं मुणेदव्वा।

13. रंगना कला

विविहसेट्ठवण्णेहिं, वत्थाणं रंजणं मुणेदव्वा।
णारीण रंगण-कला, सुंदरिम-कारणं वत्थाण।।273।।

अर्थ—विविध श्रेष्ठ वर्णों से वस्त्रों का रंगना वस्त्रों के सौंदर्य का कारण नारियों की रंगन-कला जाननी चाहिए।

14. मानकला

मेय-देस-तुला-काल-भेयादु माणं चदुविहं णेयं।
माणकलाइ तम्मि जा, णिउणा सा कुसलेसु कुसला।।274।।

अर्थ—मेय, देश, तुला और काल के भेद से मान चार प्रकार का जानना चाहिए। जो उस मानकला में निपुण है वह नारी कुशलों में कुशल जाननी चाहिए।

पत्थादि-मेयमाणं, वितत्थि-आदि-देसमाणं णेयं।
पल-सेरादी तुला य, समय-घडि-आइ-कालमाणं।।275।।

अर्थ—प्रस्थादि मेयमान है, वितस्ति हाथ आदि देशमान है, पल, सेर आदि तुलामान है और समय, घड़ी आदि कालमान जानना चाहिए।

15. संवाहन कला

कम्मसंसया सज्जोवचारिगा दुविह-संवाहणकला।
तयामंसत्थिमणाण-भेयादो चदुविहा पढमा।।276।।

अर्थ—संवाहन कला दो प्रकार की है—कर्मसंश्रया व शय्योपचारिका। त्वचा, माँस, अस्थि और मन के भेद से प्रथम कर्मसंश्रया चार प्रकार की है।

इमाण सोक्खकारगा, कम्मसंसया कला णियमा।
मिदु-मज्झ-पकिट्ठाणं भेयादो सा तिविहा तहा।।277।।

अर्थ–इनके सुख की कारक नियम से कर्म संश्रय कला है। मृदु, मध्य और प्रकृष्ट के भेद से वह तीन प्रकार की है।

तया लहदि सुहं मिदू, मज्झमं तया मंसं तह जेणं।
तिण्णि लहंति पकिट्ठो, मिदु-संगीद-सहिदो मणो य।।278।।

अर्थ–जिससे त्वचा सुख प्राप्त करती है वह मृदु है। जिससे त्वचा तथा माँस दोनों सुख प्राप्त करते हैं वह मध्यम है। जिससे तीनों अर्थात् त्वचा, माँस व हड्डी सुख प्राप्त करती है वह प्रकृष्ट है। जब इनके साथ कोमल संगीत होता है तब यह मनः संवाहन कला कहलाती है।

जा संवाहण-किरिया, करिज्जदे अणेगासणेहिं सा।
मणसुहदायग-देहुवकारगा सज्जोवचरिगा य।।279।।

अर्थ–जो संवाहन क्रिया अनेक आसनों से की जाती है वह मन को सुख देने वाली, देह की उपकारक शय्योपचारिका है।

देहाइसोक्खकारग-संवाहण-कला-जुदा जा णारी।
सा सगजादीए खलु, मण्णिज्जंति माणणीयाउ।।280।।

अर्थ–जो देहादि की सुख की कारक संवाहन कला से युक्त है वह नारी अपनी जाति में माननीय मानी जाती है।

16. पुस्तकर्म कला

खय-उवचय-संकमेहि-तियविहं पुत्थकम्मं णादव्वं।
खिल्लणाइ-णिम्माणं, कट्ठादिं तच्छिअ खयजं॥281॥

अर्थ—क्षय, उपचय और संक्रम के द्वारा पुस्त कर्म तीन प्रकार का जानना चाहिए। लकड़ी आदि छीलकर खिलौने आदि का निर्माण क्षयजन्य पुस्तकर्म है।

मुआदीहि उवलिंपिय, खिल्लणाइ-णिम्माणण-मुवचयजं।
पडिबिंबिच्चादीहिं, संकमजण्णपुत्थकम्मं च॥282॥

अर्थ—ऊपर से मिट्टी आदि का लेप कर खिलौने आदि का निर्माण करना उपचयजन्य पुस्तकर्म है। प्रतिबिंब आदि के द्वारा अर्थात् सांचे आदि में ढालकर खिलौने आदि का निर्माण करना संक्रमजन्य पुस्तकर्म है।

यंत-णियंत-सच्छिद्द-णिच्छिद्द-आइ-भेय-सहिदं।
पुत्थकम्मं जाणेज्ज, तेण जुदा सोहदि लोए॥283॥

अर्थ—यंत्र, निर्यन्त्र, सच्छिद्र तथा निश्छिद्र आदि भेदों से सहित पुस्तकर्म जानना चाहिए। उससे युक्त नारी लोक में सुशोभित होती है।

17. पत्रच्छेद कला

पत्तच्छेदं तिविहं, बुक्किम-छिण्ण-अच्छिण्ण-भेयादो।
सुई-दंतादीहिं च, णिम्माणिज्जदे बुक्किमं हुं॥284॥

अर्थ—बुष्किम, छिन्न और अच्छिन्न के भेद से पत्रच्छेद तीन प्रकार का है। सुई अथवा दांत आदि के द्वारा जो निर्माण किया जाता है वह बुष्किम है।

कंतित्तु कत्तियाए, णिम्माणिज्जदि अण्णावयवजुदं।
छिण्णं जं तं णेयं, होदि वत्थूण सुंदरिमाइ॥285॥

अर्थ–जो कैंची से काटकर बनाया जाता है और अन्य अवयवों से युक्त है वह छिन्न जानना चाहिए। यह वस्तुओं के सौंदर्यीकरण के लिए होता है।

कत्तियाए कंतित्तु, सिरिज्जदि हु जमण्णावयवरहिदं।
अच्छिण्णं णादव्वं, संभवो पत्त-कणयादीसु॥286॥

अर्थ–जो कैंची आदि से काटकर बनाया जाता है और अन्य अवयवों से रहित होता है उसे अच्छिन्न कहना चाहिए। वह पत्र, स्वर्णादि पर संभव है।

18. माल्यनिर्माण कला

अद्द-सुक्क-तदुम्मुत्त-मिस्स-भेयादु-चदुविह-मल्लकम्मं।
दाम-सिरणं च अद्दं, जाणेज्ज अद्दपुप्फादीहि॥287॥

अर्थ–आर्द्र, शुष्क तदुन्मुक्त और मिश्र के भेद से माल्यकर्म चार प्रकार का है। गीले फूलों आदि के द्वारा माला बनाना आर्द्र जानना चाहिए।

सुक्कसुमपत्तादीहि, हार-सिरणं सुक्कणिम्माणकला।
सित्थ-जवादीहिं तह, तउज्झिद-माला-णिम्माणं॥288॥

अर्थ–शुष्क फूल, पत्ते आदि के द्वारा हार का निर्माण करना शुष्क माला निर्माण कला है। चावलों के सोत्थ तथा जवा आदि के द्वारा माला बनाना तदुज्झित माला निर्माण कला है।

अद्द-सुक्क-सुमण-पत्त-जवादीहिं माला-णिम्माणं।
मिस्स-माला-णिम्माण-कला तहा संबुज्झिदव्वा।।289।।

अर्थ—ताजे, सूखे फूल, पत्ते तथा जवादि के द्वारा माला का निर्माण मिश्र माला निर्माण कला जाननी चाहिए।

19. विमोहन कला

इंदजालमायाकिद-ओसहिमंतादि-किद-विमोहणं च।
तिण्णिविहं णादव्वं, विमोहणं वि इत्थीइ कला।।290।।

अर्थ—इंद्रजालकृत, मायाकृत और औषधि व मंत्रादि कृत के भेद से विमोहन तीन प्रकार का जानना चाहिए। यह विमोहन भी स्त्री की कला है।

20. नर परीक्षण कला

विहिण्ण-विंजण-लक्खण-जुत्ता होदि पुरिस-देहा तेहिं।
पुरिसाण परिक्खणम्मि, चलण-ववहार-वत्तादीहि।।291।।
जा कुसला सा णारी, णरपरिक्खणसक्कला-संजुत्ता।
लोए पसंसणीया, बहुजणेसु दु सोहदे सुट्ठु।।292।।

अर्थ—पुरुषों की देह विभिन्न व्यंजन-लक्षणों से युक्त होती है। उन व्यंजनादि, चलन, व्यवहार, वार्त्ता आदि के द्वारा जो पुरुषों की परीक्षा करने में कुशल है वह नारी नरपरीक्षण कला से युक्त है। कलायुक्त वह नारी लोक में प्रशंसनीय है तथा बहुतजनों में श्रेष्ठ सुशोभित होती है।

21. नारी परीक्षण कला

होज्ज इत्थीण देहा, भिण्ण-भिण्ण-विंजण-लक्खणजुत्ता।
तेहिं परिक्खणम्मि दु, चलण-ववहार-वत्तादीहि।।293।।
ताण सहावं जाणिदुं सुहासुहं वा णिउणा जा णारी।
सा सेट्ठाण सहाए, लहदे माणं सम्माणं च।।294।।

अर्थ–स्त्रियों की देह भिन्न-भिन्न व्यंजन व लक्षणों से युक्त है। उन लक्षणादि, चलन, व्यवहार, वार्त्ता आदि से उनके स्वभाव को वा शुभाशुभ को जो जानने में निपुण है वह नारी श्रेष्ठ जनों की सभा में मान-सम्मान को प्राप्त करती है।

22. रत्न परीक्षण कला

इंदणीलं पवालं, पुप्फरायो मरअदो माणिक्कं।
वेरुलियं गोमेज्जं, वज्जं मुत्ता सूरकंतो।।295।।
फलह-चंदकंतादी, बहुरयण-मणीउ विज्जंति लोए।
ताण परिक्खण-कुसलो, रयण-परिक्खण-कला-जुदा हु।।296।।

अर्थ–इंद्रनील, मूंगा, पुखराज, माणिक्य, पन्ना, लहसुनिया, गोमेद, हीरा, मोती, सूर्यकांत, चंद्रकांत आदि बहुत रत्न व मणि लोक में विद्यमान हैं। उनके परीक्षण में कुशल नारी रत्न परीक्षण कला से युक्त है।

23. धातु परीक्षण कला

तउं जसदो कंसं च, पित्तल-मब्भमंडलं कालयसं।
रंगं सुवण्ण-रजदं, तंबादी बहुविहा धादू।।297।।
विज्जंते लोयम्मि दु, ताण परिक्खणम्मि इत्थी कुसला।
सा सिट्ठा इत्थीसुं, धादु-परिक्खण-कला-जुत्ता।।298।।

अर्थ—सीसा, जस्ता, काँसा, पीतल, अभ्रक, काला लौह, रॉगा, स्वर्ण, चांदी, तांबा आदि बहुत प्रकार के धातु लोक में विद्यमान हैं। उनके परीक्षण में जो स्त्री कुशल है, धातु-परीक्षण कला से युक्त वह स्त्रियों में श्रेष्ठ है।

24. परिकर्म कला

गोहूमाइ-सस्साण, फलसागादीण तिलाइ-अत्थाण।
तिल्लाइ-तरलाणं च, सोहणं धुवणं परिकम्मं।।299।।

अर्थ—गेहूँ आदि अनाज, फल-सब्जी, तिलादि खाद्य पदार्थ, तेलादि तरल पदार्थों का शोधना, धोना आदि परिकर्म कला है।

25. लीला चाल कला

सुह-पसत्थगदीए दु, हंसोव्व गयोव्व वा जा हु णारी।
मंदं मंदं रीअदि, लीला-चलण-कला-जुदा सा।।300।।

अर्थ—जो नारी हंस या गज के समान शुभ-प्रशस्त गति से धीमे-धीमे चलती है वह लीला चाल कला से युक्त है।

26. वस्त्र परीक्षण कला

कप्पासकोसेयाण-पम्हय-पत्थीण-ओण्णेयादीण।
वत्थपरिक्खणणिउणा, ताइ कला-जुत्ता सुणारी॥301॥

अर्थ—सूती, रेशमी, बारीक, मोटे, ऊनी आदि वस्त्रों के परीक्षण में निपुण उस (वस्त्र परीक्षण) कला से युक्त श्रेष्ठ नारी है।

27. समस्यापूर्ति कला

जा णारी होज्जा सा, पडिवक्केदुं चिय पहेलिगाणं।
पुच्छेदुं वि पवीणा, समस्सापुत्ति-कला-जुत्ता॥302॥

अर्थ—जो नारी पहेलियों के उत्तर देने और उनको पूछने में प्रवीण है वह समस्यापूर्ति कला से युक्त है।

28. लोकज्ञता कला

अस्सिं लोए जम्मदि, मरदि जीवदि य अणाइयालादो।
जा णादि रहस्समिमं, लोयण्णत्त-कला-जुदा सा॥303॥

अर्थ—अनादिकाल से इस लोक में जीव जन्मता, मरता और जीता है। जो नारी इस रहस्य को जानती है वह लोकज्ञता कला से युक्त है।

29. वेष कौशल कला

अणेगविह-उव्वट्टण-जुद-ण्हाणं बहुविहकेसगुंथणं।
सुंदर-सेट्ठ सज्जा-अलंकिरिया-वत्थधारणं।।304।।
गंधाइ-किरिया-जुदा, देह-सक्कार-वेस-कउसल-कला।
सीलजुदा णारी जा, तं जाणदि मणहारगा सा।।305।।

अर्थ–अनेक प्रकार के उद्वर्तन (शरीर को निर्मल करने वाले सुगंधित द्रव्य उबटनादि) से युक्त स्नान, बहु प्रकार से बाल गूंथना, सुंदर श्रेष्ठ सज्जा, श्रृंगार, वस्त्र धारण करना, गंधादि क्रिया से युक्त देह संस्कार वेष कौशल कला है। शीलयुक्त जो नारी इसे जानती है वह सबके चित्त का हरण करने वाली होती है।

30. भाषा कला

अज्ज-मिलिच्छ-सामण्ण-आदि-बहुभासासु णिउणा जा सा।
बहुभासा-कला-जुदा, मण्णा चिय णाणत्थि-जणेहि।।306।।

अर्थ–जो नारी आर्य, म्लेच्छ, सामान्य आदि बहुत भाषाओं में निपुण होती है, बहु-भाषा कला से युक्त वह नारी ज्ञानार्थी जनों के द्वारा मान्य होती है।

31. लेखन कला

सुंदरसेट्ठक्खरेसु, णाणा-गज्ज-पज्जादीण जा सा।
लेहणम्मि खलु णिउणा, होज्जा पुज्जा विदुजणेसुं।।307।।

अर्थ–जो नारी सुंदर-श्रेष्ठ अक्षरों में नाना गद्य व पद्यों के लेखन में निपुण है वह विद्वत्जनों में पूज्य होती है।

32. निधि कला

महीइ पच्छण्ण-धणं, अणेगविहा णिहिं गुत्तधणं वा।
जा जाणिदुं समत्था, णिहि-कलाए चिय णिउणा सा।।308।।

अर्थ—जो भूमि में गढ़े वा छिपे धन, अनेक प्रकार की निधि या गुप्त धन को जानने में समर्थ है वह निधि कला में निपुण है।

33. उपकरण निर्माण कला

अयस-दंत-सुत्त-खार-जदु-पासाणादीहि उवयराणं।
णिम्माणणं णारीण, सुह-उवयरण-णिम्माण-कला।।309।।

अर्थ—लोहा, दांत, सूत, क्षार, लाख, पाषाणादि के द्वारा उपकरणों का निर्माण करना नारियों की शुभ उपकरण निर्माण कला है।

34. व्यापार कला

णूणमुल्ले कयित्ता, अहियमुल्लम्मि विक्कयिदुं कुसला।
वत्थु-मुद्दा-विणिमयं, जाणदि सवणिजकला जा सा।।310।।

अर्थ—जो नारी कम मूल्य में खरीदकर अधिक मूल्य में बेचने में कुशल है तथा वस्तु-मुद्रा विनिमय को जानती है वह व्यापार कला से युक्त है।

35. रूप कला

जीवाणं सरीर-मण-वयणाणं ठिदिं तहेव अप्पस्स।
जाणिदुं समत्था जा, सा हु रूव-कला-संजुत्ता।।311।।

अर्थ—जो जीवों के शरीर, मन, वचनों की स्थिति और उसी प्रकार आत्मा की स्थिति को जानने में समर्थ है वह रूप कला से संयुक्त है।

36. दर्शन कला

मीमंसग-संख-बोद्ध-वेदिग-वेणइगादी दंसणा दु।
जाणिदुं समत्था जा, णारीणं दंसणकला सा।।312।।

अर्थ—जो मीमांसक, सांख्य, बौद्ध, वैदिक, वैनयिक आदि दर्शनों को जानने में समर्थ है वह नारियों की दर्शन कला है।

37. व्यवहार कला

पाणि-ठाण-भाव-याण-सव्वाणणुसारेण आयरेदुं।
णिउणा ववहार-जुदा, समायेसु अहिणंदणीया।।313।।

अर्थ—जो स्त्री व्यक्ति, स्थान, भाव, काल सभी के अनुसार आचरण करने में निपुण है, व्यवहार कला युक्त वह नारी समाज में अभिनंदनीय होती है।

38. चूर्ण कला

गोहूम-चणग-मकाय-तंदुल-जवादि-सस्साण पीसणे।
दालि-वेसवाराणं, कुसला चुण्ण-कला-जुत्ता हु।।314।।

अर्थ—जो नारी गेहूँ, चना, मक्का, चावल, जौं आदि धान्यों, दाल, मसाले आदि के पीसने में कुशल है वह चूर्ण कला से युक्त है।

39. गृहाचार कला

गिह-पमज्जणादीसुं अण्ण गिहकज्जेसु णिउणा जा सा।
गिहायार-कला-जुदा, कुडुंबिसुं हु सिलाहणीया।।315।।

अर्थ—जो नारी घर को साफ-सुथरा आदि करने व अन्य गृह कार्यों में निपुण है वह गृहाचार कला से युक्त स्त्री, कुटुंब के लोगों के मध्य प्रशंसा को प्राप्त होती है।

40. मर्म विचार कला

चित्ते परपाणीणं, विज्जमाणं सुहासुहवियारं च।
जाणिदुं जा समत्था, मम्म-वियारकला-जुदा सा।।316।।

अर्थ–जो पर प्राणियों के चित्त में विद्यमान शुभाशुभ विचार को जानने में समर्थ है वह मर्म विचार कला से युक्त है।

41. धर्म प्रवृत्ति कला

धम्मकज्जं कुव्विदुं, करावेदु-मण्णजणेहिं वि जा सा।
धम्मंगणा पवीणा, धम्म-पविट्टि-कला-संजुदा।।317।।

अर्थ–जो नारी धर्म कार्यों को करने व अन्य जनों से कराने में भी प्रवीन है वह धर्मांगना धर्म-प्रवृत्ति कला से संयुक्त है।

42. लाघव कला

पिदु-मादा-ससुर-सस्सु-जेट्ठाइ-अग्गजेसुं पुज्जेसुं।
धारेदि विणयभावं, परमपीदिं अणुजेसु तहा।।318।।
सव्वा आयरेदि जा, विणीदा सव्वहिअय-वासिगा सा।
तं जाणेज्जा णिच्चं, सुह-लाघवकला इत्थीए।।319।।

अर्थ–जो नित्य माता-पिता, सास-ससुर, जेठादि बड़े जनों व पूज्य पुरुषों में विनय भाव तथा छोटों में परम प्रीति धारण करती है, सभी का आदर करती है वह विनीता सभी के हृदय में वास करने वाली होती है। उसे स्त्री की शुभ लाघवकला जाननी चाहिए।

43. अतिथि सेवा कला

मुणि-आइ-परमेट्ठीण, गणिणि-अज्जादीण-मणुव्वदीणं।
सावय-सावियाणं च, वा गिहागद-सब्भजणाणं।।320।।
माण-सम्माण-करणं, अणुवज्जणं तह सक्कार-करणं।
गुणपुंजणारीणं दु, सुह-अदिहि-सेवा-कला जाण।।321।।

अर्थ–मुनि आदि परमेष्ठी, गणिनी आर्यिका, अणुव्रती, श्रावक व श्राविकाएँ अथवा घर पर आए सभ्य जनों का मान-सम्मान करना, सेवा सुश्रूषा करना तथा सत्कार करना गुणपुंज नारियों की शुभ अतिथि सेवा कला जाननी चाहिए।

44. वंशवृद्धि कला

सुह-सक्कार-संजुदा, सेज्ज सुहदायगा पदिसुहहेदू।
वंसविड्ढीइ सक्का, वंसविड्ढिकलासंजुत्ता।।322।।

अर्थ–शुभ संस्कारों से युक्त शयनासुखदायिका, पति के सुख की हेतु एवं वंशवृद्धि करने में समर्थ नारी वंशवृद्धिकला से युक्त है।

45. जीव विज्ञान कला

जीवाण पुण्ण-णाणं, संरयणा-कज्ज-विगासादीणं।
जीवण-ववहारस्स हु, भेयस्स जीवणस्स वि तहा।।323।।
जस्स जीवसंबंधिद-अण्णस्स अवि हवेदि सुणारी सा।
जीव-विण्णाण-कलाइ, संजुदा जाणह विण्णाणी।।324।।

अर्थ–जिसको जीवों की संरचना, कार्य, विकास, जीवन प्रक्रिया, जीवन, भेदादि तथा जीव संबंधित अन्य का भी पूर्ण ज्ञान होता है। वह नारी जीव विज्ञान कला से संयुक्त विशेष ज्ञानी जाननी चाहिए।

46. भूतिकर्म कला

वल्लिपुप्फादीणं च, सिरणं भूदिकम्मं वत्थादीसु।
णारीणं सा कला वि, अब्भुद चित्तरंजगा जाण।।325।।

अर्थ–वस्त्रादिकों पर बेल, पुष्पादि का बनाना भूतिकर्म है। नारियों की यह कला भी अद्‌भुत व मन को रंजायमान करने वाली जाननी चाहिए।

47. निमित्तज्ञान कला

भोमंग-वंजणेहिं, अण्णणिमित्तेहिं वा णादुं जा।
सुहासुहं कुसला सा, णिमित्तणाणकलाजुत्ता हु।।326।।

अर्थ–जो भौम, अंग, व्यंजन अथवा अन्य निमित्तों के द्वारा जीव का शुभाशुभ जानने में कुशल है वह नारी निमित्तज्ञान कला से युक्त है।

48. काव्य कला

वंसत्थ-णील-गाहा-पुढवि-आइ-बहु-छंदेसुं जा सा।
कव्वरयणाइ णिउणो, कव्वकलासंजुदा णेया।।327।।

अर्थ–जो वंशस्थ, नील, गाथा, पृथ्वी आदि बहुत छंदों में काव्य रचना में निपुण है वह नारी काव्य कला से युक्त जाननी चाहिए।

पज्जाइ-पउत्तं बहु-विहछंदं विआणदे जा णारी।
सा चिय वाणीव लोय-माणणीया होदि णियमेण।।328।।

अर्थ–जो नारी पद्यादि में प्रयुक्त बहुत प्रकार के छंद जानती है वह सरस्वती के समान लोक में नियम से मान्य होती है।

49. युद्ध कला

सक्किदि-रायपरिवार-पयादीण जुज्झिज्जदि रक्खणाइ।
ताए जुद्धकलाए, कुसला णिवोव्व वंदणीया॥329॥

अर्थ—संस्कृति, राजपरिवार, प्रजा आदि की रक्षा के लिए युद्ध किया जाता है। उस युद्ध कला में कुशल नारी राजा के समान वंदनीय होती है।

50. संचालन कला

सगडाइ-बहुअ-वाहण-भोदिगजंतादीणं चालणम्मि।
कुसला कलाजुदा जा, देससमिद्धिकारगा दु सा॥330॥

अर्थ—जो गाड़ी आदि बहुत से वाहनों व भौतिक यंत्रों के चलाने में कुशल है, वह वाहन संचालन कला से युक्त नारी देश की समृद्धि की कारक है।

लोयम्मि विज्जमाणं, अणेगजंत-मुप्पाडिदुं वत्थुं।
माणणीआ जा सेट्ठ-विहीइ चालिदुं कुसला सा॥331॥

अर्थ—लोक में विद्यमान अनेक यंत्र वस्तुओं को उत्पन्न करने में समर्थ हैं। जो उन यंत्रों को श्रेष्ठ विधि से चलाने में कुशल है वह स्त्री माननीया है।

51. औषधि कला

बहुविह-फल-वेसवार-साग-सुम-पत्त-मूल-तण-तयादी।
होंति ओसहिरूवा वि, रयण-भस्स-धादु-इच्चादी॥332॥

अर्थ—बहुत प्रकार के फल, मसाले, सब्जी, फूल, पत्ते, जड़, तना, छाल आदि एवं रत्न, भस्म, धातु इत्यादि भी औषधि रूप होते हैं।

जाणिय ओसहिदाणे, जीवपइडि-ठाण-यालादिं हु सा।
ओसहिकला संजुदा, सवरहिदं कुणिदुं समत्था॥333॥

अर्थ—जो जीव की प्रकृति, स्थान कालादि को जानकर औषधि देने में समर्थ है वह स्वपर हित करने में समर्थ नारी औषधि कला से युक्त है।

देहाणेगरोयाणि, मणरोयं वि समणेदुं समत्था।
वत्तवड्ढगा जा सा, वेज्जोव्व चिय आदरणीया॥334॥

अर्थ—जो देह के अनेक रोग व मन के रोग को भी शमन करने में समर्थ है, आरोग्य का वर्द्धन करने वाली वह नारी वैद्य के समान आदरणीय है।

52. पशु पालन कला

गवादि-गेहिअ-पसूण, पालणे अणुकंवा-वच्छल्लेहि।
सपुत्तव्व कुसला जा, सा पसुपालणकलाजुत्ता॥335॥

अर्थ—जो नारी अनुकंपा व वात्सल्य से अपने पुत्र के समान गाय आदि पालतू पशुओं के पालने में कुशल है वह पशुपालन कला से युक्त है।

53. जलतरणी कला

सरिदा-तडागादी य, संतरिदुं जा विहिण्ण-मुद्दासुं।
पवीणा सा जलतरिणि-कला जुत्ता सिलाहणीया॥336॥

अर्थ—जो विभिन्न मुद्राओं में नदी, सरोवर आदि तैरने में प्रवीन है वह जलतरणी कला से युक्त नारी प्रशंसनीय है।

54. वास्तुकला

भवण-पासाद-मंदिर-गिहादीणं सम्मपमाणणाणं।
अर्थ–दिसादीण वि जाइ सा, होदि वत्थुकला-संजुत्ता।।337।।

भवन, प्रासाद, मंदिर, गृहादि का सम्यक् रूप से प्रमाण एवं दिशा आदि का ज्ञान जिसके होता है वह नारी वास्तु कला से संयुक्त है।

55. गणित कला

अंग-बीयाइ-गणिदे, कुसला जा सा गणिदकलाजुत्ता।
जीवणगणिदं णादुं, होदि गणिदणाणमावसियं।।338।।

अर्थ–जो अंकगणित, बीजगणित आदि में कुशल है वह गणित कला से युक्त है। जीवन का गणित जानने के लिए गणित ज्ञान आवश्यक है।

56. ज्योतिष कला

गहसंचारादीहिं, भाविसुहासुहं जाणिदुं समत्था।
जा णारी सा जोदिस-कलाजुदा रहस्सविज्जाइ।।339।।

अर्थ–जो नारी ग्रहों के संचार आदि के द्वारा भावी शुभाशुभ जानने में समर्थ है वह रहस्य विद्या ज्योतिष कला से युक्त है।

57. आयुध ग्रहण कला

असि-आइ-विहिण्णाउह-संचालणम्मि जा त्थी कुसला सा।
सगरज्जाइ-रक्खगा, आउह-गहण-कला-जुत्ता हु।।340।।

अर्थ–जो स्त्री तलवार आदि विभिन्न शस्त्रों के संचालन में कुशल है, स्वराज्य आदि की रक्षिका वह नारी आयुध ग्रहण कला से युक्त है।

58. पठन कला

विविहभासाण पढणं, सुद्धुच्चारण-सराघादादीहि।
बुद्धिमंत-णारीणं, पढण-कला सय मुणेदव्वा।।341।।

अर्थ—शुद्धोच्चारण, स्वराघात आदि के द्वारा विविध भाषाओं का पढ़ना बुद्धिमान नारियों की सदा पठन कला जाननी चाहिए।

59. शल्य चिकित्सा कला

सरेण अण्णुवयरेण, वा जदि होदि देहे वणं कयावि।
अण्णरोयेसुं वि तह, अंगछिंदिय बहुपयारेण।।342।।
पसुपक्खि-आदीणं च, रोयादिम्मि हवणम्मि करिज्जेदि।
सल्लचिगिच्छा तं जा, जाणदि विसेसकलाजुत्ता।।343।।

अर्थ—बाण या अन्य उपकरण से यदि देह में कदाचित् घावादि होता है वा अन्य रोगों में अथवा पशु-पक्षियों के रोगादि होने पर अंगादि छेदकर बहुत प्रकार से शल्य चिकित्सा की जाती है। जो उसे जानती है वह नारी विशेष शल्य चिकित्सा कला से युक्त है।

60. शयन विधि कला

सेज्ज-अत्थुरणादीण, अत्थरणे कुसला जा णारी सा।
सव्वप्पिय-मणहारग-संजुत्ता सयणविहिकलाइ।।344।।

अर्थ—जो नारी शैय्या, बिछौना आदि के बिछाने में कुशल है वह सर्वप्रिय मनोहारक शयन विधि कला से युक्त है।

61. तरुणी परिकर्म कला

विस्सस्स सव्वपाणी, पसण्णं करिदुं णंदिदुं जा सा।
कुसला णंदवड्ढगा, तरुणि-परिकम्म-कला-जुत्ता।।345।।

अर्थ—जो नारी विश्व के सभी प्राणियों को प्रसन्न करने में,

आनंदित करने में कुशल है वह आनंद की वृद्धि करने वाली नारी तरुणी परिकर्म कला से युक्त है।

62. लालन-पालन कला

संताणस्स पालणे, वच्छलाणुसासणसुसक्कारेहि।
जा कुसला सा पालण-कला-संजुदा पुज्जणीया।।346।।

अर्थ–जो नारी वात्सल्य, अनुशासन, सुसंस्कारादि से संतान के पालन में कुशल है, पालन कला से युक्त वह स्त्री पूज्यनीय है।

63. वस्त्राभूषण कला

विहिण्ण-वत्थाभूसण-णिम्माणम्मि वा धारणे जा सा।
कुसला वत्थाभूसण-कलाजुदा मणोहरा जाण।।347।।

अर्थ–जो नारी विभिन्न वस्त्रों व आभूषणों के निर्माण व धारण में कुशल है वह मनोहरा नारी वस्त्राभूषण निर्माण व धारण कला से युक्त जाननी चाहिए।

64. केशसज्जा कला

केसाण पडिकप्पणं, पडिअग्गणं विहिण्णपयारेणं।
गुंथणं वा णारीण, केस-कउसल-कला जाणेज्ज।।348।।

अर्थ–विभिन्न प्रकार से केशों का संभालना, सजाना अथवा गूंथना नारियों की केश कौशल कला जाननी चाहिए।

सुखदजीवनार्थ कला

जह रयणेसुं वज्जं, रुक्खेसु चंदणं गंगा णदीसु।
दीवेसु णंदीसरो, अहिंसा य सव्वधम्मेसुं।।349।।
वण्णपसूसुं सीहो, खीरो सिंधूसु णंदणं वणेसु।
णिग्गंथो साहूसुं, देवेसुं वीयरायो तह।।350।।

णर-णारीण सिक्खासु, सुकला खलु सव्वदा मुणेदव्वा।
तम्हा सुकलं लहिदुं, ववसेज्ज सुहद-जीवणत्थं।।351।।

अर्थ–जैसे रत्नों में हीरा, वृक्षों में चंदन, नदियों में गंगा, द्वीपों में नंदीश्वर, सभी धर्मों में अहिंसा, वन्य पशुओं में शेर, सागरों में क्षीर सागर, वनों में नंदन वन, साधुओं में निर्ग्रंथ साधु एवं देवों में वीतरागी देव हैं उसी प्रकार नर-नारियों की शिक्षाओं में सर्वदा सुकला जाननी चाहिए। अतः सुखद जीवन के लिए सुकला प्राप्ति हेतु प्रयत्न करना चाहिए।

जीवन में कला

जलं विणा जह कूवो, अक्किंदुं विणा णहं तहा णेयं।
मोत्तिअं विणा सिप्पी, सुकलाए विणा जीवणं हु।।352।।

अर्थ–जिस प्रकार जल के बिना कूप, सूर्य-चंद्रमा के बिना आकाश व मोती के बिना सीप होता है उसी प्रकार सुकला के बिना जीवन जानना चाहिए।

झुणिहीणो जह संखो, जोदिहीणदीवो रसहीणंबं।
घिदहीणं दुद्धं जह, तह जीवणं सुकलाहीणं।।353।।

अर्थ–जैसे ध्वनि से हीन शंख, ज्योति से हीन दीपक, रस से हीन आम्रफल व घृत से हीन दुग्ध होता है उसी प्रकार सुकला से हीन जीवन जानना चाहिए।

कलाहीन मनुष्य

कलाविहीणो पसू वि, लोए ण सक्को लहिदुं सम्माणं।
तो कहं णरो होज्ज, कलाहीणो आयंसिगो हु।।354।।

अर्थ–कला से विहीन पशु भी लोक में सम्मान प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता तो कला से हीन मनुष्य किस प्रकार आदर्श हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

जिणवयणहीणसत्थं, उण्हत्तविहीणो अणलो जह तह।
पाणहीणो सरीरो, कलाहीणो णरपुंगवो हु॥355॥

अर्थ–जैसे जिन वचनों से रहित शास्त्र, ऊष्णता से रहित अग्नि तथा प्राण से हीन शरीर होता है वैसे कला हीन नर पुंगव होता है।

कलायुक्त प्रशंसनीय

णीयकुलुप्पण्ण-पुरिस-इत्थी वा खलु जदि सुकलासहिदा।
होंति सुर-णर-तिरियेहि, पुज्जा वि तह पसंसणीया॥356॥

अर्थ–नीच कुल में उत्पन्न यदि स्त्री वा पुरुष भी श्रेष्ठ कलाओं से युक्त हैं तो वे भी सुर, नर, तिर्यंचों के द्वारा पूज्य व प्रशंसनीय होते हैं।

कला ग्रहण प्रेरणा

किरणविहीणो-अक्को, गंधहीणपुप्फं अंकहीणं च।
सुण्णं पाणपदिट्ठा-हीण-जिणबिंबो मण्णेज्जा॥357॥
जह तह महुरिम-विहीण-इक्खुदंडो सक्कलाहीणणरो।
तम्हा सव्वजणा चिय, सुकलं गहेज्ज बहुजदणेण॥358॥

अर्थ–जिस प्रकार किरणों से हीन सूर्य, गंध से हीन पुष्प, अंकों से हीन शून्य, प्राण प्रतिष्ठा से रहित जिनबिंब, मधुरता से रहित इक्षुदंड माना जाता है उसी प्रकार सुकला से हीन मनुष्य माना जाता है अतः सभी लोगों को बहुयत्नपूर्वक सुकला ग्रहण करनी चाहिए।

सुकलाजुत्तो पुरिसो, ण सीददि कस्सिं वि देसयालम्मि।
सत्तुभवणम्मि वि माण-सम्माणं लहदे पसंसं॥359॥

अर्थ–सुकला से युक्त पुरुष कभी किसी भी देश व काल में दुःखी नहीं होता। वह शत्रु के घर में भी मान-सम्मान व प्रशंसा को प्राप्त करता है।

कला से शोभा

जह सव्वरीणाहो हु, सोहेदि णिम्मल-णिरब्भायासे।
तह सुकलासंजुत्तो, पुरिसो सव्वदा समायम्मि॥360॥

अर्थ–जिस प्रकार चंद्रमा निर्मल व निरभ्राकाश में सुशोभित होता है उसी प्रकार सुकला से संयुक्त पुरुष सदा समाज में सुशोभित होता है।

जोदिविहीणणेत्तं व, णीरविहीणतरंगिणीव कया वि।
सक्कलाहीणपुरिसो, सुट्ठुजणेसु णेव सोहेदि॥361॥

अर्थ–सत्कला से विहीन पुरुष श्रेष्ठ जनों के मध्य ज्योति से हीन नेत्र व जल से हीन नदी के समान कदापि सुशोभित नहीं होता।

अंतिम मंगलाचरण

सगुरुस्स अवि गुरू जो, तं चरियचक्किसूरिसंतिसिंधुं।
सुउज्जुयार-मच्चंत-समत्तभावजुदं-णिरुवहिं॥362॥
महाणाणिं णिरेयं, तवस्सिं सुद्धप्पझाणब्भासिं।
देसस्स महविहूदिं, धम्ममुत्तिं सय णमंसामि॥363॥

अर्थ–जो अपने गुरु (श्री सिद्धप्पा स्वामी) के भी गुरु हुए, उन सुसंयमी, अत्यंत समता भाव से युक्त, निष्कपट, महाज्ञानी, निष्कंप, तपस्वी, शुद्धात्म ध्यान के अभ्यासी, देश की महाविभूति, धर्ममूर्ति, चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज को सदा नमस्कार करता हूँ।

तस्स सिस्सं मोक्खपह-उवाअरूवं तह मंदकसायिं।
सूरिं पायसागरं, पणिवयामि तिण्णिभत्तीए॥364॥

अर्थ–उनके शिष्य मोक्ष पथ के उपाय रूप, मंदकषायी आचार्य श्री पायसागर जी को त्रिभक्ति से नमस्कार करता हूँ।

पणपरमेट्ठीण परम-भत्त-मक्खविजेदुं तस्स सिस्सं।
आइरियं जयकित्तिं, वंदामि सगपावक्खयिदुं।।365।।

अर्थ–उनके शिष्य पंच परमेष्ठी के परम भक्त, इंद्रिय विजेता, आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज को अपने पापों के क्षय के लिए नमस्कार करता हूँ।

गणणायगमाइरियं, चउविहसंघस्स तस्स वरसिस्सं।
देसस्स भूसणं सय, णमामि देसभूसणसूरिं।।366।।

अर्थ–पुनः उनके श्रेष्ठ शिष्य चतुर्विध संघ के गणनायक, देश के आभूषण आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज को नमस्कार करता हूँ।

सिद्धंतचक्कवट्टिं, रट्ठसंतं सिदपिच्छिधारगं च।
बालजोगिं हिदयरं, णाणमुत्तिं णिरावकंखिं।।367।।
जिणसासण-णायगं च, सिस्साण मादुव्व वच्छलजुत्तं।
संपइ महापुरिसोव्व, धम्मपहावगमप्पलीणं।।368।।
विज्जाणंद-सायरे, संलीणं विज्जाणंदं सूरिं।
हं सूरिवसुणंदी हु पणमामि विसुद्धभत्तीए।।369।।

अर्थ–बालयोगी, हितकर, ज्ञानमूर्ति, निःस्पृही, जिनशासन नायक, शिष्यों के लिए माँ के समान वात्सल्य से युक्त, वर्तमान में महापुरुष के समान धर्म प्रभावक, आत्मलीन, सिद्धांत चक्रवर्ती, राष्ट्रसंत, श्वेतपिच्छिधारक, विद्या के आनंद रूपी सागर में लीन आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज को मैं आचार्य वसुनंदी विशुद्ध भक्ति से नमस्कार करता हूँ।

ग्रंथकार की लघुता

इदंकलाविण्णाणं, भणिदं पुव्वाइरियाणुसारेण।
अप्पमदिजणिददोसं, सोहिय खमंतु मे विण्णा॥370॥

अर्थ–यह कला विज्ञान नामक ग्रंथ पूर्वाचार्यों के अनुसार कहा गया। अल्प बुद्धि से उत्पन्न दोषों को शोधनकर विज्ञजन मुझे क्षमा करें।

प्रशस्ति

अंतिमणुबद्धकेवलि-जंबूसामि-ठाण-वोलखेडाइ।
अजियणाह-जिणालये, भरदपुरे रायट्ठाणम्मि॥371॥
दव्वाणंतचदुट्ठय-परमेट्ठि-केवलि-वीरद्धे इंद।
असोयसिद-एयारसि-सगदिक्खातिहीए पुण्णो॥372॥

अर्थ–यह कलाविज्ञान नामक ग्रंथ अंतिम अनुबद्ध केवली जंबूस्वामी तपोस्थली बौलखेड़ा भरतपुर राजस्थान के अजितनाथ जिनालय में द्रव्य (6) अनंतचतुष्टय (4) परमेष्ठी (5) केवली (2) 'अंकानां वामतो गतिः' से 2546 वीर निर्वाण संवत् में अश्विन शुक्ल एकादशी स्वयं (ग्रंथकार) की दीक्षा तिथि पर पूर्ण हुआ।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा

रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

प्राकृत साहित्य

1. प्राकृत वाणी भाग-1, 2, 3
2. अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)
3. अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)
4. अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)
5. जिणवर-थोत्तं (जिनवर स्तोत्र)
6. जदि-किदि-कम्मं (यति कृतिकर्म)
7. णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)
8. णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)
9. तच्चसारो (तत्त्व सार)
10. धम्म-सुत्तं (धर्म सूत्र)
11. रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)
12. सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)
13. अप्पणिब्भर भारदो (आत्मनिर्भर भारत)
14. विज्जा-वसु-सावयायारो (विद्या वसु श्रावकाचार)
15. अप्प-विहवो (आत्म वैभव)
16. अट्ठंग जोगो (अष्टांग योग)
17. णमोयार महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)
18. मूल-वण्णो (मूल वर्ण)
19. मंगल-सुत्तं (मंगल सूत्र)
20. विस्स-धम्मो (विश्व धर्म)
21. विस्स-पुज्जो-दियंबरो (विश्व पूज्य दिगम्बर)
22. समवसरण सोहा (समवशरण शोभा)
23. वयण-पमाणत्तं (वचन प्रमाणत्व)
24. अप्पसत्ती (आत्म शक्ति)
25. कला-विण्णाणं (कला विज्ञान)
26. को विवेगी (विवेकी कौन)
27. पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)
28. तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)
29. रयणकंडो (सूक्ति कोश)
30. धम्म-सुत्ति-संगहो (धर्म सूक्ति संग्रह)
31. कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)
32. खवगराय सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)
33. सिरि सीयलणाह चरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)
34. अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)
35. समणायारो (श्रमणाचार)

भावार्थ

1. अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)
2. णिग्गंथ-थुदि (निर्ग्रंथ स्तुति)
3. तच्च-सारो (तत्त्वसार)
4. रट्ठसंति-महाजण्णो (राष्ट्रशांति महायज्ञ)
5. णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)

टीका ग्रंथ

1. प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)
2. वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3. नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)

इंग्लिश साहित्य

Inspirational Tales Part- 1 & 2

वाचना साहित्य

1. मुक्ति का वाग्दान (इष्टोपदेश)
2. बोधि वृक्ष (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)
3. शिवपथ का रथ (सामायिक पाठ)
4. स्वात्मोपलब्धि (समाधि तंत्र)

प्रवचन साहित्य

1. आईना मेरे देश का
2. उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3. उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दुःखदानी)
4. उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)
5. उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)
6. उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7. उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)
8. उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9. उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)
10. उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दुःख ही मानो)
11. उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)
12. खुशी के आँसू
13. खोज क्यों रोज-रोज
14. गुरुत्तं भाग 1-15
15. चूको मत
16. जय बजरंगबली
17. जीवन का सहारा
18. ठहरो! ऐसे चलो
19. तैयारी जीत की
20. दशामृत
21. धर्म की महिमा
22. ना मिटना बुरा है न पिटना
23. नारी का धवल पक्ष
24. शायद यही सच है
25. श्रुत निर्झरी
26. सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा
27. सीप का मोती (महावीर जयंती)
28. स्वाती की बूँद

हिंदी गद्य रचना

1. अन्तर्यात्रा
2. अच्छी बातें
3. आज का निर्णय
4. आ जाओ प्रकृति की गोद में
5. आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान
6. आहारदान
7. एक हजार आठ
8. कलम पट्टी बुद्धिका
9. गागर में सागर
10. गुरु कृपा
11. गुरुवर तेरा साथ
12. जिन सिद्धांत महोदधि
13. डॉक्टरों से मुक्ति
14. दान के अचिन्त्य प्रभाव
15. धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)
16. धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17. निज अवलोकन
18. वसु विचार
19. वसुनन्दी उवाच
20. मीठे प्रवचन (भाग 1-6)
21. रोहिणी व्रत कथा
22. स्वप्न विचार
23. सद्गुरु की सीख
24. सफलता के सूत्र
25. सर्वोदयी नैतिक धर्म
26. संस्कारादित्य
27. हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना

1. अक्षरातीत
2. कल्याणी
3. चैन की जिंदगी
4. ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5. मुक्ति दूत के मुक्तक
6. हाइकू
7. हीरों का खजाना

विधान रचना

1. कल्याण मंदिर विधान
2. कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3. चौसठऋद्धि विधान
4. णमोकार महार्चना
5. दुःखों से मुक्ति (बृहद् सहस्रनाम महार्चना)
6. यागमंडल विधान
7. समवशरण महार्चना
8. श्री नंदीश्वर विधान
9. श्री सम्मेदशिखर विधान
10. श्री अजितनाथ विधान
11. श्री संभवनाथ विधान
12. श्री पद्मप्रभ विधान
13. श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)
14. श्री चंद्रप्रभ विधान
15. श्री पुष्पदंत विधान
16. श्री शांतिनाथ विधान
17. श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान
18. श्री नेमिनाथ विधान
19. श्री महावीर विधान
20. श्री जम्बूस्वामी विधान
21. श्री भक्तामर विधान
22. श्री सर्वतोभद्र महार्चना

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य

1. आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)
2. आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य जी)
3. आध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)
4. कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5. कर्म प्रकृति (सिद्धांत चक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)
6. गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7. चार श्रावकाचार संग्रह
8. जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9. जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)
10. जिन सहस्रनाम स्त्रोत
11. तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)
12. तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
13. तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)
14. तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्री मद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15. तच्च वियारो सारो (आ. श्री वसुनंदी जी)
16. तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17. धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)
18. धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19. ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)
20. नीतिसार समुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदी स्वामी जी)
21. पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)
22. प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी)
23 पंचरत्न
24. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्र स्वामी जी)
25. मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)
26. भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी जी स्वामी)
27. भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)
28. मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्ति स्वामी जी)
29. योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबालचंद्र जी)
30. योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री बालचंद्र जी)
31. रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)
32. वसुऋद्धि
    - रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)
    - पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)
    - लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)
    - अर्हत प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)
    - स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
    - इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
    - वैराग्यमणि माला (आ. श्री विशाल कीर्ति जी)
    - ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33. सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगति स्वामी जी)
34. सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35. समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
36. समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
37. सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)
38. विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय जी)

प्रथमानुयोग साहित्य

1. अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)
2. आराधना कथा कोष (ब्र. श्री नेमीदत्त जी) (भाग 1-2-3)
3. करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)
4. कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5. गौतम स्वामी चारित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)
6. चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
7. चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)
8. चेलना चारित्र
9. चंद्रप्रभ चरित्र
10. चौबीसी पुराण
11. जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
12. त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
14. धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15. धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
16. नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17. नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)
18. प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19. पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)
20. पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21. पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)
22. पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23. भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)
24. भद्रबाहु चरित्र
25. मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
26. महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27. महापुराण (भाग 1-2)
28. महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29. मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)
30. यशोधर चरित्र
31. रामचरित्र (भाग 1-2) (आ. श्री सोमदेव स्वामी)
32. रोहिणी व्रत कथा
33. व्रत कथा संग्रह
34. वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35. विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)
36. वीर वर्धमान चरित्र
37. श्रेणिक चरित्र
38. श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39. श्री जम्बूस्वामी जी चरित्र (श्री वीर कवि)
40. शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41. सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)
42. सम्यक्त्व कौमुदी
43. सती मनोरमा
44. सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45. सुरसुंदरी चरित्र
46. सुलोचना चरित्र
47. सुकुमाल चरित्र
48. सुशीला उपन्यास
49. सुदर्शन चरित्र (पं. गोपालदास बैरया)
50. सुभौम चरित्र
51. हनुमान चरित्र
52. क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित हिंदी साहित्य

1. अरिष्ट निवारक त्रय विधान
   - नवग्रह विधान
   - वास्तु निवारण
   - मृत्युंजय (पं. आशाधर जी कृत)
2. श्री जिनसहस्त्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान
3. श्री जिनसहस्त्रानाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक
4. शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान
   - भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल))
   - शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी)
   - सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)
5. कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)
6. तत्त्वोपदेश (छहढ़ाला) (पुं. प्रवर दौलतराम जी)
7. दिव्य लक्ष्य (संकलन-हिंदी पाठ, स्तुति आदि)
8. धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
10. भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11. विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)
12. सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13. संसार का अंत
14. स्वास्थ्य बोधामृत

गुरु पद विनयांजली साहित्य

1. अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
2. पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)
3. वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
4. दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्वनंदनी, वर्चस्वनंदनी)
5. स्मृति पटल से भाग 1-2 (आ. श्री वर्धस्वनंदनी)
6. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
7. गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)
8. परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
9. स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)
10. स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
11. हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)
12. वसु सुबंध (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद्र जी जैन)
13. समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')